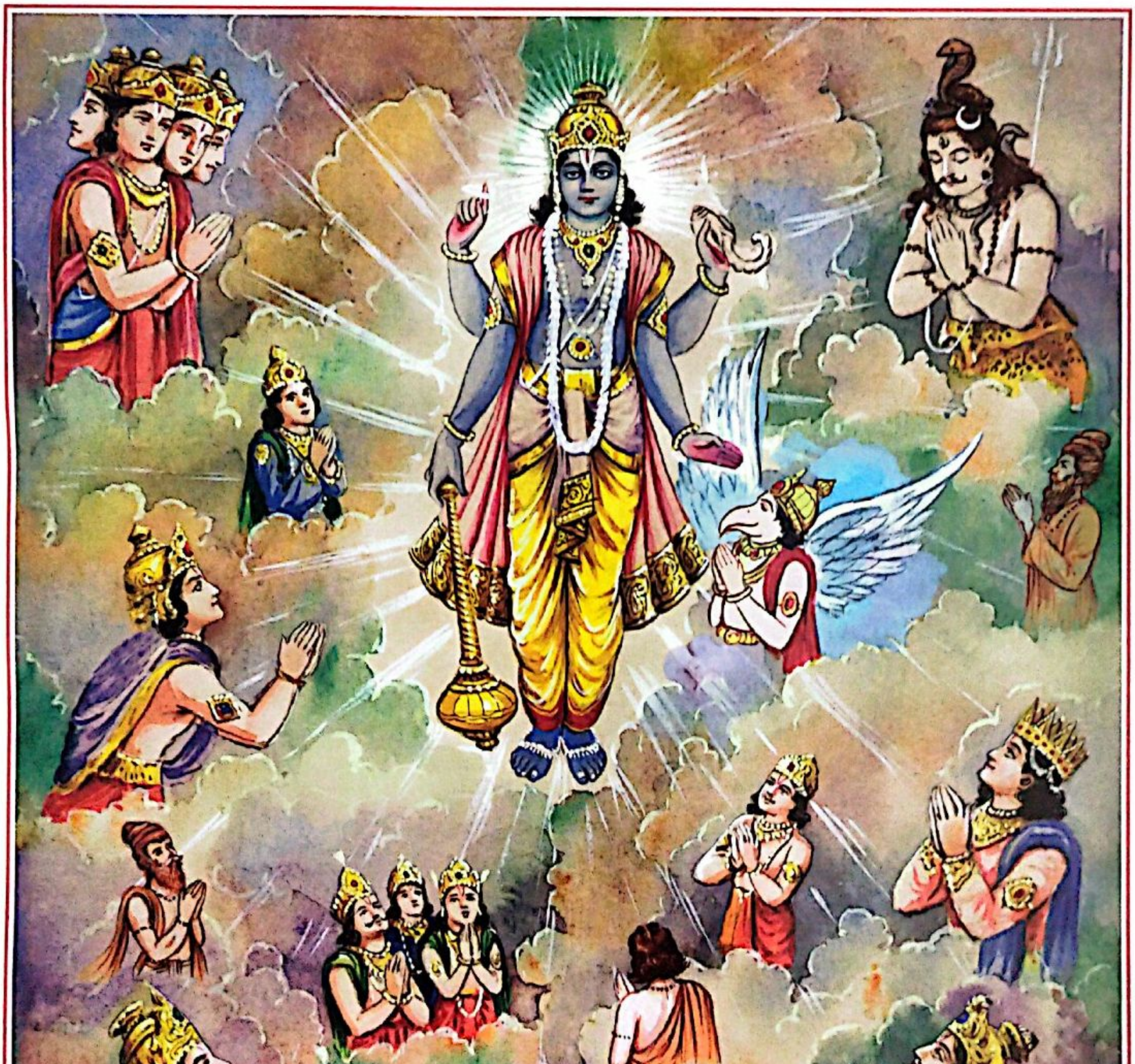
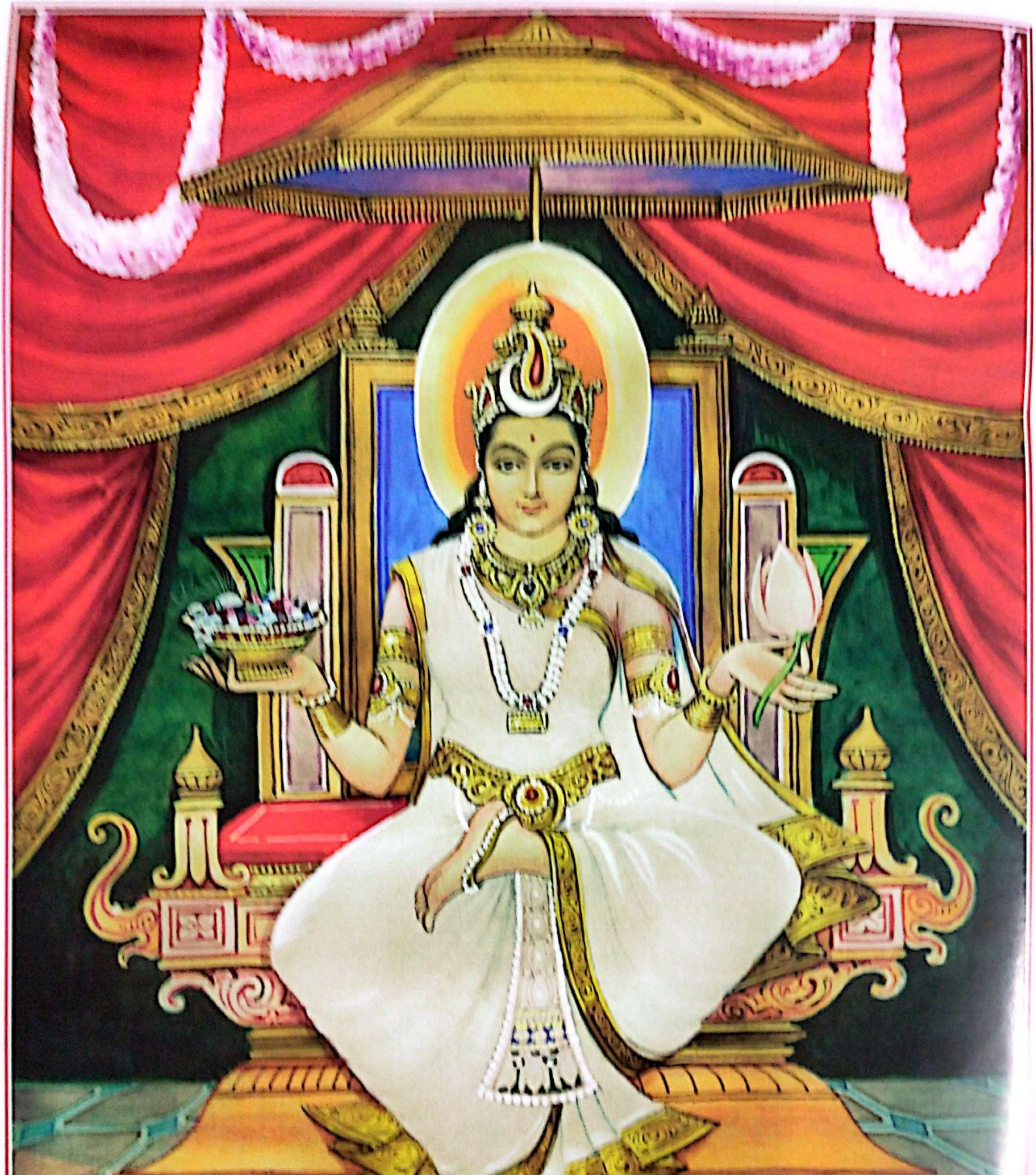
* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १८ रुपये



अवतरण-प्रार्थना



भगवती अम्बिका देवी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



सत्यं शौर्यतपःक्षमाऽमृतवचोऽहिंसाश्च श्रद्धालुतां प्रीतिं भूतदयां जनेऽपि सकले सौहार्दमापादयन्।
भक्तिं कल्मषनाशिनीं भगवतीमानन्ददां वर्धयन् कल्याणं वितनोतु नोऽभयकरः 'कल्याण'रूपो हरिः॥

वर्ष १००

गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०८३, श्रीकृष्ण-सं० ५२५२, अप्रैल २०२६ ई०

संख्या ४

पूर्ण संख्या ११९३

'परिपालय देवि विश्वम्'

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥

'जो पुण्यात्माओंके घरोंमें स्वयं ही लक्ष्मीरूपसे, पापियोंके यहाँ दरिद्रतारूपसे, शुद्धान्तःकरणवाले पुरुषोंके हृदयोंमें बुद्धिरूपसे, सत्पुरुषोंमें श्रद्धारूपसे तथा कुलीन मनुष्यमें लज्जारूपसे निवास करती हैं, उन आप भगवतीको हमलोग नमस्कार करते हैं। देवि! विश्वका सर्वथा पालन कीजिये।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,६०,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०८३, श्रीकृष्ण-सं० ५२५२, अप्रैल २०२६ ई०, वर्ष १००—अंक ४

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

१- 'परिपालय देवि विश्वम्'........ ३
२- कल्याण........ ५
३- अवतरण-प्रार्थना [आवरण चित्र-परिचय]........ ६
४- अनन्य शरणागति
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)........ ७
५- स्वामी श्रीब्रह्मर्षिदासजी महाराज-वचनामृत [सन्त-वाणी]........ ८
६- भक्त भीष्मका भाव
(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)........ ९
७- समताका मूल—अनासक्ति [साधकोंके प्रति]
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)........ १०
८- चित्तशुद्धिके लिये अशुद्ध संकल्पोंका त्याग आवश्यक
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)........ १२
९- नवसंवत्सर (प्रो० श्रीगिरिजाशंकरजी शास्त्री)........ १३
१०- जब प्रेम स्वयं प्रार्थना बन जाय
(पूज्य सन्त श्रीजानकीनन्दनदासजी महाराज)........ १५
११- बहूके सद्भावका असर [बोधकथा]........ १६
१२- भगवान्‌के साथ एक नाता........ १७
१३- परमार्थतः अजर-अमरके लिये रोना व्यर्थ
(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)........ १८
१४- पाण्डवोंका स्वरूप (गोलोकवासी परम भागवत
सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)........ १९
१५- वैशाखमास-माहात्म्य
[हमारी संस्कृति और हमारे त्योहार]........ २१

विषय **पृष्ठ-संख्या**

१६- जीवन-लक्ष्य [बोधकथा]........ २२
१७- देवी-कवचका वैशिष्ट्य (ब्रह्मर्षि श्रीश्रीसत्यदेवजी)........ २३
१८- श्रीरामचरितमानसमें वसन्त-वर्णन (श्रीउमेशप्रसादसिंहजी)........ २४
१९- धर्मसेतुपालक—श्रीराम (श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)........ २६
२०- देहाध्यास कैसे छूटे ? (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')........ २८
२१- 'सब धन धूरि समान' [बोधकथा]........ २९
२२- सीतारामका औपनिषदिक स्वरूप (पद्मविभूषण आचार्य
श्रीबलदेवजी उपाध्याय)........ ३०
२३- अध्यात्मवाद ही शान्तिका मूल है
(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र)........ ३२
२४- रामनाम—एक अचूक औषधि (श्रीरमेशचन्द्रजी राय)........ ३४
२५- ध्येयको शुद्ध करो (डॉ० श्रीमुरलीधर चाँदनीवाला)........ ३६
२६- उत्कलमणिकी उदात्त भावना [बोधकथा]........ ३७
२७- परम शान्तिका उपाय (सन्तप्रवर श्रीपथिकजी महाराज)........ ३८
२८- नीरोग रहनेहेतु घरेलू नुस्खे [आरोग्य-चर्चा]
(श्रीशिवनाथजी दूबे)........ ३९
२९- दक्षिण भारतके कुछ शैव सन्त [सन्त-चरित]........ ४१
३०- पंचगव्य-चिकित्सा (श्रीहुकुमचन्दजी सावला)........ ४३
३१- सुभाषित-त्रिवेणी........ ४४
३२- व्रतोत्सव-पर्व [ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व]........ ४५
३३- कृपानुभूति........ ४६
३४- पढ़ो, समझो और करो........ ४७
३५- मनन करने योग्य........ ५०

चित्र-सूची

१- अवतरण-प्रार्थना........ (रंगीन)........ आवरण-पृष्ठ
२- भगवती अम्बिका देवी........ (,,)........ मुख-पृष्ठ
३- अवतरण-प्रार्थना........ (इकरंगा)........ ६
४- विदुर-धृतराष्ट्र-संवाद........ (,,)........ २०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

वार्षिक शुल्क ₹500 (विदेशमें ₹5,200) सभी अंक ट्रेकिंग सुविधा सहित

सदस्यता हेतु gitapress.org या साथ के QR कोड Scan करें।

'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के E-Books Option पर निःशुल्क पढ़ें।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार / सहसम्पादक—कृष्णकुमार खेमका

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org	e-mail : kalyan@gitapress.org	✆ 09235400242 / 244	WhatsApp : 09235400242
पुस्तक-बिक्रीविभाग :	e-mail : booksales@gitapress.org	✆ 09235400242 / 244	WhatsApp : 09235400244

कल्याण

याद रखो—सच्ची शान्ति, सच्चे सुख और सच्ची सफलताका पूर्ण रहस्य ईश्वर-विश्वास या आत्मविश्वास है। जब तुम्हें यह विश्वास हो जायगा कि सुख, शान्ति और सफलता बाहरी परिस्थितियोंपर निर्भर नहीं करतीं, वे तुम्हारे आभ्यन्तरिक विश्वासपर ही निर्भर हैं, तब तुममें उस विलक्षण शक्तिका उदय हो जायगा, जो बाहरी परिस्थितियोंको बदल देगी और सुख, शान्ति तथा सफलता सहज ही तुम्हें प्राप्त हो जायगी।

याद रखो—जब तुम्हें भगवत्कृपापर विश्वास होगा और भगवान्‌के अनुकूल चलने लगोगे, तब समस्त ईश्वरीय शक्तियाँ तुम्हारी सहायता करने लगेंगी तथा सफलता तुम्हारे सामने घुटने टेककर अपनेको स्वीकार करनेके लिये प्रार्थना करने लगेगी।

याद रखो—जब तुम्हारा ईश्वरपर विश्वास हो जायगा, तब तुम्हें यह अनुभव होगा कि तुम्हारे सारे योगक्षेमका भार ईश्वर वहन कर रहे हैं, वे प्रत्येक पतनसे तुम्हारी रक्षा करते हैं, तब तुम्हारे अन्दर सहज ही निर्भयता और निश्चिन्तता आ जायगी।

याद रखो—ऐसा कोई दोष नहीं है, जिसे तुम दूर न कर सको; ऐसी कोई कठिनाई नहीं है, जिसे तुम पार न कर सको; ऐसी कोई स्थिति नहीं है, जिसपर तुम विजय प्राप्त न कर सको। बस ईश्वरपर, ईश्वरकृपापर और ईश्वरीय शक्तिपर तुम्हारा विश्वास होना चाहिये।

याद रखो—ऐसी कोई उत्तम स्थिति नहीं है, जो तुम्हें न प्राप्त हो सके; ऐसी कोई उत्तम स्थिति नहीं है, जो सत्य न हो और ऐसा कोई उच्च स्तर नहीं है, जिसपर तुम न पहुँच सको। भविष्यकी सारी विजय तुम्हारे हाथमें है; बस, तुम्हें सर्वशक्तिमान् नित्य परमसुहृद् भगवान्‌की अमोघ कृपापर विश्वास होना चाहिये, भगवान्‌के शरण हो जाना चाहिये और उनके बलसे अपनेको परम बलवान् मान लेना चाहिये।

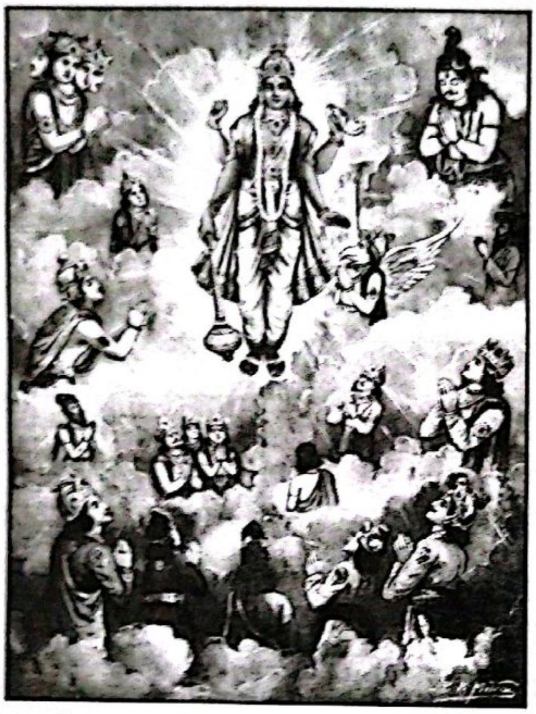
याद रखो—संसारमें सर्वोत्तम, सबसे अधिक सन्तोषजनक और निश्चित सफलतापूर्ण सिद्धान्त यह है कि तुम अनन्त शक्ति भगवान्‌की कृपापर विश्वास करो और उस कृपाके बलसे अपनी आत्मशक्तिको जाग्रत् करो। फिर बाहरी प्रतिकूल परिस्थितियाँ तुम्हारा कुछ बिगाड़ तो कर ही नहीं सकेंगी, प्रत्युत उनका रूप बदल जायगा और वे तुम्हारे अनुकूल होकर तुम्हारी सफलतामें सहायक हो जायँगी।

याद रखो—अपनेको हीन समझना और परिस्थितियोंके सामने झुक जाना आत्महननके समान है। तुम्हारे अन्दर ईश्वरीय शक्ति है, उस शक्तिके द्वारा तुम सब कुछ करनेमें समर्थ हो। परिस्थितियोंको बदलना भगवत्कृपाके बलपर तुम्हारे हाथमें है। तुम हीन नहीं हो, तुम सर्वलोकपूज्य भगवान्‌के सनातन अंश हो। तुम दीन नहीं हो, तुम सर्वलोकमहेश्वर भगवान्‌की सन्तान हो। तुम निर्बल नहीं हो, सर्वशक्तिमान् महान् भगवान्‌का अनन्त बल तुम्हारी सहायताके लिये सदा प्रस्तुत है। तुम विश्वास करो और हीनताके मिथ्या संस्कारोंको मिटाकर महान् बन जाओ।

याद रखो—सर्वशक्तिमान्, सर्वलोकमहेश्वर, सर्वज्ञ भगवान् तुम्हारे सुहृद् हैं। वे अपनी पूर्ण महानतासे नित्य तुम्हें महान् बनानेको तैयार हैं। तुम उनकी कृपापर विश्वास करो; उनकी शक्ति, सर्वज्ञता तथा सौहार्दपर विश्वास करो और पापों, विरोधी परिस्थितियों तथा कष्टोंपर विजय प्राप्त-कर सच्ची सुख-शान्ति और सफलताको प्राप्त करो। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

अवतरण-प्रार्थना



ब्रह्माके वरदानके बलपर रावण अजेय हो चुका था। उसने कुबेरके पुष्पक-विमान तथा उनकी राजधानी लंकापर जबरन अधिकार कर लिया। देवराज इन्द्रको परास्तकर उसने अमरावतीको जीत लिया। देव, पितर, यक्ष, किन्नर, मनुष्य—कोई भी ऐसा नहीं बचा, जो दशमुखके आगे परास्त होकर उसके क्रूर शासनका शिकार न हुआ हो। सूर्य, पवन, चन्द्र आदि देवता उसके आदेशका पालन करते थे। समुद्र रावणसे भयभीत रहता था। दसों दिक्पाल उसके भयसे थर्राते थे। पृथ्वी, आकाश, पाताल, सबपर रावणका अधिकार हो गया। लोक-पितामह ब्रह्मा उसके यहाँ नित्य वेदपाठके लिये जाते थे। देवताओंको उसने दर-दर भटकनेके लिये बाध्य कर दिया। सृष्टिमें कोई भी ऐसा प्राणी नहीं बचा, जिसने रावणके आगे घुटने न टेक दिये हों। धर्म-कर्मका तो कोई नाम लेनेवाला भी नहीं दिखायी देता था। उसके राज्यमें चारों तरफ अधर्मका साम्राज्य स्थापित हो गया।

रावणके अत्याचारसे सन्तप्त होकर एक दिन सभी देवता मिलकर एक साथ ब्रह्माजीके पास गये और कहा—'पितामह! आपके वरदानके बलसे रावण धर्मको निर्मूल करनेमें लगा है। चारों तरफ त्राहि-त्राहि मच गयी है। धरती माँ भी उसके अत्याचारसे व्याकुल हो उठी हैं। हम सभी देवताओंके अधिकार और पदको उसने छीन लिया है। आपने ही उसको वरदान देकर सबल बनाया है। अत: आप ही उसके अत्याचारको समाप्त करनेका कोई उचित उपाय भी समझानेकी कृपा करें।' ब्रह्माजीने कहा—'देवताओ! मैं भी रावणको वर देकर विवश हो चुका हूँ। मेरी बुद्धि भी इस विषयमें मेरा साथ देनेमें असमर्थ है। हाँ, यदि श्रीहरिकी सहायता मिल जाय तो बात बन सकती है, वही हम सबके एकमात्र रक्षक हैं।' ब्रह्माजीका यह विचार सबको उचित लगा। सब लोगोंने 'साधु! साधु!!' कहकर इसका समर्थन किया।

सभी देवता आपसमें विचार करने लगे कि प्रभुसे मिलनेके लिये कहाँ जायँ। जितने देव उतने मत। कोई वैकुण्ठकी बात करता तो कोई क्षीरसिन्धुमें जानेके लिये कहता। उस सभामें भगवान् शिव भी उपस्थित थे। उन्होंने कहा—'प्रभुसे जल, थल, आकाश, पाताल—कोई भी स्थान खाली नहीं है; आवश्यकता है उन्हें प्रेमसे पुकारनेकी।' भगवान् शिवकी बात सबको अच्छी लगी। सभी देवता बड़े ही प्रेमसे हाथ जोड़कर अत्यन्त श्रद्धा-प्रेमसे भगवान्की स्तुति करने लगे।

उस समय देवताओंकी प्रेमपूर्ण स्तुति सुनकर आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुम लोग भयका त्याग कर दो। तुम्हारे लिये मैं मानव-योनिमें शीघ्र ही अवतार लूँगा। मेरा मनुष्य-अवतार मेरे अंशोंके साथ सूर्यवंशमें होगा। कश्यप और अदितिने पूर्वजन्ममें कठिन तपस्या की है। मैंने उनके यहाँ पुत्ररूपमें अवतार लेनेका वर दिया है। वे महाराज दशरथ-कौसल्याके रूपमें अयोध्याके राजा-रानी हैं। मैं उनके यहाँ राम-लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्नके नामसे चार रूपोंमें अवतरण लूँगा तथा मेरी आदिशक्ति जनकपुरमें महाराज जनककी पुत्री सीताके रूपमें अवतरित होगी। मैं राक्षसोंको मारकर शीघ्र ही पृथ्वीका भार हरण करूँगा। देवताओ! अब तुम सब निर्भय हो जाओ।'

आकाशवाणी सुनकर सभी देवगण परम प्रसन्न हुए। ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा कि तुम लोग स्वयं भी रावणके विरुद्ध युद्धमें भगवान्की सहायता करनेके लिये बन्दरोंके रूपमें अवतार ग्रहण करो। फिर सभी देवगण बन्दरोंके रूपमें धरतीपर प्रकट हुए और प्रभुके अवतारकी प्रतीक्षा करने लगे।

अनन्य शरणागति

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।६२, ६६)

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'हे भारत! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, उस परमात्माकी कृपासे ही परम शान्ति और सनातन परमधामको प्राप्त होगा। (वह परमात्मा मैं ही हूँ, अतएव) सर्व धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्द वासुदेव परमात्माकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, मैं तुझे समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर!'

भगवान्की उपर्युक्त आज्ञाके अनुसार हम सबको उसके शरण हो जाना चाहिये। लज्जा-भय, मान-बड़ाई और आसक्तिको त्यागकर शरीर और संसारमें अहंता-ममतासे रहित होकर केवल एक परमात्माको ही परम आश्रय, परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भावसे अतिशय श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान्के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते रहना एवं भगवान्का भजन-स्मरण करते हुए ही भगवदाज्ञानुसार कर्तव्य-कर्मोंका निःस्वार्थभावसे केवल परमेश्वरके लिये ही आचरण करना तथा सुख-दुःखोंकी प्राप्तिको भगवान्का भेजा हुआ पुरस्कार समझकर उनमें समचित्त रहना। संक्षेपमें इसीका नाम अनन्य-शरण है।

चित्तसे भगवान् सच्चिदानन्दघनके स्वरूपका चिन्तन, बुद्धिसे 'सब कुछ एक नारायण ही है' ऐसा निश्चय, प्राणोंसे (श्वासद्वारा) भगवन्नाम-जप, कानोंसे भगवान्के गुण, प्रभाव और स्वरूपकी महिमाका भक्तिपूर्वक श्रवण, नेत्रोंसे भगवान्की मूर्ति और भगवद्भक्तोंके दर्शन, वाणीसे भगवान्के गुण, प्रभाव और पवित्र नामका कीर्तन एवं शरीरसे भगवान् और उनके भक्तोंकी निष्काम सेवा—ये सभी कर्म शरणागतिके अन्दर आ जाते हैं। इस प्रकार भगवत्सेवापरायण होनेसे भगवान्में प्रेम होता है।

संसारमें जिन वस्तुओंको मनुष्य 'मेरी' कहता है, वे सब भगवान्की हैं। मनुष्य मूर्खतासे उनपर अधिकार आरोपणकर सुखी-दुखी होता है। भगवान्की सब वस्तुएँ भगवान्के ही काममें लगनी चाहिये। भगवान्के कार्यके लिये यदि संसारकी सारी वस्तुएँ मिट्टीमें मिल जायँ तो भी बड़े आनन्दकी बात है और उनके कार्यके लिये बनी रहें तो भी बड़े हर्षका विषय है। उन वस्तुओंको न तो अपनी सम्पत्ति समझना चाहिये और न उन्हें अपने भोगकी सामग्री ही मानना चाहिये। क्योंकि वास्तवमें तो सब कुछ नारायणका ही है, इसलिये नारायणकी सर्ववस्तु नारायणके अर्पण की जाती है। यों समझकर संसारमें जो कार्य किये जाते हैं, वही भगवत्-प्रेमरूप शरणकी प्राप्तिका साधन है।

उपर्युक्त प्रकारसे जो कुछ भी कर्म किया जाय, सब भगवान्के लिये करना चाहिये। इसीका नाम अर्पण है। जो कुछ भी हो रहा है, सब भगवान्की इच्छासे हो रहा है, लीलामयकी इच्छासे लीला हो रही है। इसमें व्यर्थके बुद्धिवादका बखेड़ा नहीं खड़ा करना चाहिये। अपनी सारी इच्छाएँ भगवान्की इच्छामें मिलाकर अपना जीवन सर्वतोभावसे भगवान्को सौंप देना चाहिये। जब इस प्रकार जीवन समर्पण होकर प्रत्येक कर्म केवल भगवदर्थ ही होने लगेगा, तभी हमें भगवत्प्रेमकी कुछ प्राप्ति हुई है—हम भगवान्के शरण होने चले हैं, ऐसा समझा जायगा।

सच्चिदानन्दघन परमात्माकी पूर्ण शरण हो जानेपर एक सच्चिदानन्दघनके सिवा और कुछ भी नहीं रह जाता। वह अपार, अचिन्त्य, पूर्ण, सर्वव्यापक एक परमात्मा ही अचल अनन्त आनन्दरूपसे सर्वत्र परिपूर्ण है। उस आनन्दको कभी नहीं भुलाना चाहिये। आनन्दघनके साथ मिलकर आनन्दघन ही बन जाना चाहिये। जो कुछ भासता है, जिसमें भासता है और जिसको भासता है, वह सब एक आनन्दघन परमात्मा ही परिपूर्ण है। इस पूर्ण आनन्दघनका ज्ञान भी उस आनन्दघनको ही है।

सन्त-वाणी—

स्वामी श्रीब्रह्मर्षिदासजी महाराज-वचनामृत

❀ भारतवर्ष भगवान्‌की अवतार-भूमि है। श्रीभगवान्‌ने यहाँ विविध रूपोंमें चौबीस अवतार धारण किये हैं। साथ ही यह तपोभूमि भी है। यहाँके पुण्यक्षेत्र श्रीनैमिषारण्यमें ८८ हजार सिद्ध महात्माओंने तपश्चर्या की है। ऐसी पुण्यस्थलीमें वे ही लोग नित्य निवास कर सकते हैं और सुखसे जीवनयापन कर सकते हैं, जो श्रीभगवद्भक्त और तपोनिष्ठ हों; फिर चाहे वे सद्गृहस्थ हों या सन्तजन। इस पूज्य पद्धतिके विरुद्ध जो किंचित् भी अनधिकार चेष्टा करेगा, वह अक्षम्य अपराधी माना जायगा।

आज कहीं भी रावण, हिरण्यकशिपु, बेन और कंसका अस्तित्व नहीं दिखलायी पड़ता; किंतु विभीषण, प्रह्लाद और ध्रुवके चारु चरित्रोंसे आज भी चतुर्दिक्—दिग्दिगन्त आलोकित हो रहा है। यह भारतीय सिद्धान्त सदासे महामान्य रहा है और अन्ततक रहेगा। आज चाहे जड़वादकी जड़तासे इसे न महत्त्व दें; किंतु इसमें हमारी ही क्षति है, हमारा ही पतन है और हमारा ही सर्वनाश है।

❀ भारतवर्ष धर्मप्राण देश है। जो धर्मकी खिल्ली उड़ाते हुए धर्मप्राण पुरुषोंका उपहास कर रहे हैं, वे सावधान हो जायँ और भगवान् श्रीमनुकी इस अमर वाणीको न भूलें—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

और धर्मप्रिय बन्धुओंसे तो मैं यही कहूँगा कि वे सदा सर्वदा और सर्वथा '**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः**' इस श्रीमद्भगवद्वाणीकी बार-बार आवृत्ति करते हुए धर्मकी बलिवेदीपर अपनेको उत्सर्ग कर दें। यही उनका धर्म है और ईश्वरीय आदेशका पालन है। ऋषि-ऋणसे मुक्तिका भी यही महामन्त्र है।

❀ आज सर्वत्र मतगणनाका बाहुल्य है, जनसमुदायका आधिक्य है तथा अन्धानुकरणकर्ताओंका वैशिष्ट्य है; किंतु क्या अनन्त तारागणोंके होते हुए भी अमावस्याके घोर अन्धकारका आत्यन्तिक ध्वंस हो जाता है? नहीं-नहीं, कदापि नहीं, त्रिकालमें भी नहीं। अन्धकारका अन्त तो वास्तवमें एकमात्र सोमके द्वारा ही होता है। ठीक इसी प्रकार शास्त्रपद्धतिसे पराङ्मुख अनन्त लोगोंका भी प्राधान्य हो जाय तो क्या उसमें शाश्वती शान्ति और स्थायी आनन्दका आविर्भाव हो जायगा? नहीं, कदापि नहीं। एक धर्मात्मा पुरुषके द्वारा, एक तपोनिष्ठ महात्माके द्वारा, एक भगवद्भक्त व्यक्तिके द्वारा विश्वका कल्याण और जगत्‌का उद्धार हो सकता है। एक प्रह्लाद और एक विभीषणके द्वारा दैत्यकुलका मुख उज्ज्वल हो गया और वे भुवनभूषण बन गये। आज यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रत्येक संस्था और सम्प्रदाय जनसंख्याकी वृद्धिके साधनमें संलग्न हैं। और धर्मनिष्ठ पुरुष अंगुलियोंपर गिननेयोग्य भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। तो क्या इससे उनका महत्त्व कम हो जायगा? अनन्त नदियोंके बीचमें अकेली श्रीगंगाजीकी महिमा क्या न्यूनतम है?

किसी मनुष्यके खजानेमें करोड़ों रुपये हों, पर वे हों खोटे, तो उनसे क्या हो सकता है? उन्हींकी जगह एक खरा रुपया हो तो उससे अनेक कार्य हो सकते हैं। बल्कि खोटे रुपये रखनेके जुर्ममें उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। अधर्म करनेवाला अपवादभाजन बनता है और धर्माचरण करनेवाला प्रशंसाका पात्र होता है। अनेकानेक शृगाल जंगलमें हौआ-हौआ करते हैं, इससे क्या वनराजका कुछ बिगड़ जाता है? किंतु अकेले उठकर मैदानमें सिंहनाद करनेवाले केशरीका वह प्रबल प्रताप होता है कि सारा वन्य-प्रदेश प्रकम्पित हो जाता है और सारा अरण्यमण्डल आतंकित हो उठता है तथा वहाँके सभी जीव स्तम्भित और मृतप्राय हो जाते हैं।

भक्त भीष्मका भाव

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

ऐसे शरणागत भक्त भगवान्के प्रत्येक मंगलमय विधानमें सतत सन्तुष्ट होते हैं। उनका यह दृढ़ निश्चय है कि भगवान् कभी अमंगल-विधान कर ही नहीं सकते, शिव कभी अशिव नहीं हो सकते। सद्वैद्यकी कड़वी दवा या डॉक्टरद्वारा चीर-फाड़की भाँति उनका कठोर-से-कठोर भी प्रत्येक कार्य जीवके सहज कल्याणार्थ ही हुआ करता है। वैद्य या डॉक्टर तो हितैषी होनेपर भी भूल कर सकते हैं, परंतु सर्वज्ञ भगवान्से कभी भूल नहीं होती। वैद्य-डॉक्टरोंके पास ऐसे जहर भी रहते हैं, जिनके प्रयोगसे आदमी मर सकता है, परंतु भगवान्के अमृत-भण्डारमें जहर है ही नहीं। उनके किसी भी प्रयोगसे किसीका परिणाममें अनिष्ट हो ही नहीं सकता। लौकिक जहर भी यदि उनके स्पर्श हो जाता है तो वह भी 'मीराके जहरके प्याले' की भाँति अमृत बन जाता है। अवश्य ही उनकी कृपाका स्वरूप कभी बड़े मधुर, कोमल, मृदुरूपमें प्रकट होता है, तो कभी भयानकरूपमें। यह भयानकता और मधुरता भी हमें अपने भावके अनुसार ही दीखती है। वस्तुतः भगवत्कृपा सदा ही कोमल और मधुर है। विश्वासी शरणागत भक्त सुदर्शन हाथमें लिये मारनेको प्रस्तुत भगवान्की भयावनी मूर्तिमें भी उनकी कोमलता और मधुरताके दर्शन पाकर उनका स्वागत करते हैं। हाथमें चाबुक लेकर मारनेको सामने आते हुए कालरूप भगवान्को देखकर भक्तवर भीष्मजी कहते हैं—

एह्येहि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोऽस्तु ते॥
मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे।
त्वया हि देव संग्रामे हतस्यापि ममानघ॥
श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः।
सम्भावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाद्य संयुगे॥
प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चानघ।

(महाभारत भीष्मपर्व १०६। ६४—६७)

'आइये, आइये। पुण्डरीकाक्ष! आइये! देवदेव! आपको नमस्कार है। सात्वतश्रेष्ठ! आज इस महायुद्धमें मेरा वध कीजिये। परमात्मन्! श्रीकृष्ण! गोविन्द! आपके हाथसे मरनेपर मेरा कल्याण हो जायगा। मैं आज त्रैलोक्यमें सम्मानित हो गया हूँ। हे निष्पाप! आप मुझपर मनचाहा प्रहार कीजिये। मैं तो आपका दास हूँ।'

भगवान्के इस भक्तवत्सल परमप्रिय कालरूपको भीष्मजी जीवनमें नहीं भूले। प्राण छोड़ते समय भी उन्होंने इसी रूपमें दर्शन देनेकी प्रार्थना की। भक्त सूरदासने भीष्मके भावका वर्णन यों किया है—

वा पट पीतकी फहरान।
कर धरि चक्र चरनकी धावनि, नहिं बिसरति वह बान॥
रथतें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच-रजकी लपटान।
मानो सिंह सैलतें निकस्यौ, महामत्त गज जान॥
जिन गुपाल मेरो पन राख्यो, मेटि बेदकी कान।
सोई सूर सहाय हमारे, निकट भये हैं आन॥

भगवान्के विधानको बदलनेमें असमर्थ और निरुपाय होनेके कारण सन्तुष्ट रहना दूसरी बात है और उसमें पहले प्रतिकूल रहनेपर भी, भगवान्का दिया हुआ दान समझकर उसमें सहज अनुकूलताका अनुभव करके परम सन्तुष्ट होना दूसरी बात है। भक्त वास्तवमें निरुपाय होनेके कारण मन मारकर सन्तुष्ट नहीं रहता, बल्कि प्रत्येक प्रतिकूल-से-प्रतिकूल विधानमें मंगलरूप भगवान्का मंगलमय हाथ देखकर अनुकूलताका प्रत्यक्ष अनुभव करता हुआ परम प्रसन्न होता है। उसे उसमें वस्तुतः अतिशय आनन्द मिलता है।

वह प्रभुकी रंग-बिरंगी आकृति और लीलाओंको देख-देखकर पद-पदपर प्रमुदित होता है। यह भी शरणागतिका एक प्रधान साधन है।

साधकोंके प्रति—

समताका मूल—अनासक्ति

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

एक राजा था। वह एक दिन शामके वक्त अपने महलकी छतपर घूम रहा था। साथमें पाँच-सात आदमी भी थे। महलके पीछे कुछ मकानोंके खण्डहर थे। उन खण्डहरोंमें कभी-कभी एक सन्त आकर ठहरा करते थे। राजाने उन खण्डहरोंकी तरफ संकेत करते हुए अपने आदमियोंसे पूछा कि 'यहाँ एक सन्त आकर ठहरा करते थे न?' उन्होंने कहा कि 'हाँ महाराज! आया करते थे, पर कुछ वर्षोंसे उनको यहाँ आते देखा नहीं।' राजाने कहा कि 'वे बड़े विरक्त, त्यागी सन्त थे। उनके दर्शनसे बड़ी शान्ति मिलती थी। वे मिलें तो उनसे कोई बात पूछें। उनका पता लगाओ।'

राजाके आदमियोंने उनका पता लगाया तो पता लगा कि वे शरीर छोड़ गये। मनुष्यकी यह बड़ी भूल होती है कि जब कोई मौजूद होता है, तब उससे लाभ लेते नहीं और जब वह मर जाता है, तब रोते हैं। राजाने कहा कि 'अहो! हमसे बड़ी गलती हो गयी कि हम उनसे लाभ नहीं ले सके! अब उनका कोई शिष्य हो तो उसको ले आओ, हम उससे मिलेंगे।'

राजपुरुषोंने खोज की तो एक साधु मिले। उनसे पूछा कि 'महाराज! क्या आप उन सन्तको जानते हैं?' वे बोले कि 'हाँ, जानता हूँ। वे बड़े ऊँचे महात्मा थे।' राजपुरुषोंने फिर पूछा कि 'क्या आप उन सन्तके शिष्य हैं?' साधुने कहा कि 'नहीं, वे किसीको शिष्य नहीं बनाते थे। हाँ, मैं उनके साथमें जरूर रहा हूँ।' राजाके पास यह समाचार पहुँचा तो राजाने उनको ही लानेकी आज्ञा दी। राजाके आदमी उस साधुके पास गये और बोले कि 'महाराज! राजाने आपको बुलाया है, हमारे साथ चलिये।' वे बोले कि 'भाई! मैंने क्या अपराध किया है?' कारण कि राजा प्रायः उसीको लानेकी आज्ञा देते हैं, जिसने कोई गलती की हो। राजपुरुषोंने कहा 'नहीं महाराज! आपको तो वे सत्संगके लिये, पारमार्थिक बातें पूछनेके लिये बुलाते हैं। आप हमारे साथ पधारें।' वे साधु 'अच्छा' कहकर उनके साथ चल दिये। रास्तेमें वे एक गलीमें जाकर बैठ गये। राजपुरुषोंने समझा कि वे लघुशंका करते होंगे। गलीमें एक कुतियाने बच्चे दे रखे थे। साधुने उनमेंसे एक पिल्लेको उठा लिया और अपनी चद्दरके भीतर छिपाकर राजपुरुषोंके साथ चल पड़े।

राजाओंके यहाँ आसन (कुर्सी)-का बड़ा महत्त्व होता है। किसको कौन-सा आसन दिया जाय, किसको कितना आदर दिया जाय, किसको ऊँचा और किसको नीचा आसन दिया जाय—इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। राजाने साधुके बैठनेके लिये गलीचा बिछा दिया और खुद भी उसपर बैठ गये, जिससे ऊँचे-नीचे आसनका कोई विचार न रहे। बाबाजीने बैठते ही अपने दोनों पैर राजाके सामने फैला दिये। राजाने सोचा कि यह मूर्ख है, सभ्यताको जानता नहीं। कभी राजसभामें गया नहीं, इसलिये राजाओंके सामने कैसे बैठना चाहिये—यह इसको आता नहीं। राजाने पूछ लिया—पैर फैलाये कबसे? बाबाजी बोले—हाथ सिकोड़े तबसे।

तात्पर्य यह है कि कुछ लेनेकी इच्छा होती तो हम हाथ फैलाते और पैर सिकोड़ते, पर हमें लेना कुछ है ही नहीं, इसलिये हाथ सिकोड़ लिये और पैर फैला दिये। ऐसा कहकर बाबाजीने हाथ-पैर ठीक कर लिये। राजाने उत्तर सुनकर विचार किया कि ये मूर्ख नहीं हैं, प्रत्युत बड़े समझदार, त्यागी और चेतानेवाले हैं। राजाने उन सन्तकी चर्चा की तो साधुने कहा कि वे बड़े अच्छे सन्त थे, वैसे सन्त बहुत कम हुआ करते हैं।

राजाने पूछा—आप उनके साथ रहे हैं न?

साधुने कहा—हाँ, मैं उनके साथ रहा तो हूँ।

राजाने पूछा—आपने उनसे कुछ लिया होगा?

साधुने कहा—हमने लिया नहीं राजन्!

राजा बोला—तो आप रीते ही रह गये?

साधुने कहा—नहीं, ऐसे सन्तके साथ रहनेवाला कभी रीता रह सकता ही नहीं। हमने लिया तो नहीं, पर रह गया।

राजाने पूछा—क्या रह गया?

साधुने कहा—जैसे डिबियामेंसे कस्तूरी निकालनेपर भी उसमें सुगन्ध रह जाती है, घीके बर्तनमेंसे घी निकालनेपर भी उसमें चिकनाहट रह जाती है, ऐसे ही सन्तके साथ रहनेसे उनकी सुगन्ध, चिकनाहट रह गयी।

राजा बोला—महाराज! वह सुगन्ध, चिकनाहट क्या है—यह मेरेको बताइये।

साधुने कहा—राजन्! यह हम साधुओंकी, फकीरोंकी बात है, राजाओंकी बात नहीं। आप जानकर क्या करोगे?

राजाने कहा—नहीं महाराज! आप जरूर बताइये।

साधुने चद्दरके पीछे छिपाया पिल्ला बाहर निकाला और राजाके सामने कर दिया।

राजाने कहा—हम समझे नहीं महाराज!

साधुने कहा—आप बुरा तो नहीं मानोगे?

राजाने कहा—अरे, मैं तो पूछता ही हूँ, बुरा कैसे मानूँगा? आप सच्ची बात कह दें।

साधुने कहा—राजन्! मेरेको आपमें और इस पिल्लेमें फर्क नहीं दीखता; यह समता ही उन सन्तके संगकी सुगन्ध, चिकनाहट है! यह पिल्ला बहुत साधारण चीज है और आप बहुत विशेष हैं—यह बात तो सच्ची है, पर मेरेको ऐसा नहीं दीखता। आपमें भी प्राण हैं और इसमें भी प्राण हैं। आपके भी श्वास चलते हैं और इसके भी श्वास चलते हैं। आपका शरीर भी पाँच भूतोंसे बना है और इसका शरीर भी पाँच भूतोंसे बना है। आप भी देखते हैं, यह भी देखता है। आप भी खाते-पीते हैं, यह भी खाता-पीता है। आपमें और इसमें फर्क क्या है? संसारके सभी प्राणियोंमें कोई-न-कोई विशेषता है ही। किसीमें कोई विशेषता है तो किसीमें कोई विशेषता है, टोटलमें सब बराबर हुए! आप ऊँचे पदपर हैं और यह नीचा है—यह फर्क तो तब होता है, जब मेरा स्वार्थका सम्बन्ध हो। मेरा किसीसे स्वार्थका सम्बन्ध है ही नहीं, न आपसे कुछ लेना है, न कुत्तेसे कुछ लेना है, फिर मेरे लिये आपमें और इसमें फर्क क्या है? आप बुरा न मानें। आपने बतानेका आग्रह किया, इसलिये साफ बात कह दी। मैं आपका तिरस्कार नहीं करता हूँ, प्रत्युत सत्कार करता हूँ; क्योंकि आप प्रजाके मालिक हैं।

तात्पर्य है कि जब हमें संसारसे कुछ लेना होता है, तब हमें कोई धनी और कोई दरिद्र दीखता है। धनी मिले या दरिद्र मिले, हमें उनसे कुछ लेना है ही नहीं, तो फिर दोनोंमें क्या फर्क हुआ? एक साधु थे। घरोंसे भिक्षा लेना और पाकर चले आना—यह उनका प्रतिदिनका नियम था। शहरसे भिक्षा लाते समय बीचमें बहुत भीड़ रहती है, अतः स्पर्शदोषसे बचनेके लिये वे वहीं बैठकर पा लेते थे। एक दिन भिक्षा पानेके बाद वे अपना पात्र माँजने लगे तो एक सेठने कहा कि आपका पात्र मैं माँज देता हूँ। साधुने कहा कि आपसे नहीं मँजवाना है, तो वह सेठ बोला कि मेरा नौकर माँज देगा। साधुने कहा कि 'मेरे लिये आपमें और नौकरमें फर्क क्या है? आप माँजें या नौकर माँजे, फर्क क्या पड़ा? फर्क तो तब पड़े, जब मैं आपको बड़ा आदमी समझूँ और नौकरको मामूली आदमी समझूँ। मेरे लिये जैसे आप आदरणीय हैं, ऐसे ही नौकर आदरणीय है और जैसे नौकर आदरणीय है, ऐसे ही आप आदरणीय हैं। नौकर है तो आपका है, मेरा नौकर है क्या? उसको मैं तनख्वाह देता हूँ क्या? मेरा सम्बन्ध तो आपके साथ और नौकरके साथ समान ही है। अन्तर तो तब हो जब मेरेको कुछ लेना हो, कोई राग-द्वेषपूर्वक सम्बन्ध जोड़ना हो!'

तात्पर्य है कि संसारसे लेनेकी इच्छाका त्याग करनेसे आसक्ति मिट जाती है। अतः केवल देनेके लिये, सुख पहुँचानेके लिये ही संसारके साथ सम्बन्ध रखे—यह आसक्ति मिटानेका बड़ा सीधा सरल उपाय है।

चित्तशुद्धिके लिये अशुद्ध संकल्पोंका त्याग आवश्यक

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

संकल्प-पूर्तिका सुख साधन-पथमें अग्रसर होनेवाले साधकके लिये विश्रामका क्षण है, उसीको जीवन मानकर ठहरना नहीं चाहिये। विश्रामका क्षण सुखद है, इसमें सन्देह नहीं है और वास्तविक उद्योगकी सामर्थ्यके लिये उसकी आवश्यकता भी है, जिससे साधक अपने अभीष्ट लक्ष्यतक पहुँच सके। संकल्प-अपूर्तिकी वेदना संकल्प-पूर्तिके सुखसे मुक्त करके साधकको अपने अभीष्ट लक्ष्यतक पहुँचनेके लिये नवीन स्फूर्ति प्रदान करती है। इस दृष्टिसे संकल्प-पूर्ति तथा अपूर्ति दोनोंमें ही उस अनन्तका मंगलमय विधान निहित है।

यद्यपि संकल्प-पूर्तिका सुख सभीको प्रिय होता है और संकल्प-अपूर्तिका दुःख किसीको भी अभीष्ट नहीं है, परंतु संकल्प-पूर्तिका वह अंश जो संकल्प-पूर्तिकी वास्तविकताका परिचय देनेमें समर्थ होता है, साधकके लिये हितकर है अर्थात् संकल्प-पूर्तिमें कितना सुख है, इसका बोध हो जाता है। पर यदि उसीको जीवन मान लिया जाय तो संकल्प-पूर्तिसे जड़ता आ जाती है; क्योंकि जिन वस्तुओंसे संकल्प पूरा होता है उनसे तादात्म्य हो जाता है और उनका महत्त्व इतना बढ़ जाता है कि वस्तुओंसे अतीत भी कोई जीवन है, इसकी चेतना नहीं रहती। उस जड़ताका नाश संकल्प-अपूर्तिकी वेदनासे होता है। इस दृष्टिसे संकल्प-अपूर्ति बड़े ही महत्त्वकी वस्तु है। पर असावधानीके कारण यदि साधक संकल्प-अपूर्तिके दुःखसे भयभीत हो जाय तो वह बेचारा संकल्प-पूर्तिकी दासतामें आबद्ध हो जाता है। अतः बड़ी ही सावधानीपूर्वक इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि संकल्प-अपूर्तिसे वेदना चाहे जितनी हो, पर संकल्प-पूर्तिकी आशा नहीं करनी चाहिये। संकल्प-पूर्तिसे निराशा आ जानेपर वस्तुओंसे अतीतके जीवनकी जिज्ञासा तथा लालसा स्वतः जाग्रत् होती है, जो संकल्प-पूर्तिके रागको खा जाती है, और जिसके बाद जिज्ञासाकी पूर्ति स्वतः हो जाती है।

संकल्प-उत्पत्ति किसी अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये प्रेरित करती है अर्थात् प्राप्त परिस्थितिमें असन्तोष उत्पन्न कर देती है। ऐसी दशामें या तो किसी अप्राप्त वस्तु-अवस्था आदिका आवाहन होने लगता है अथवा सभी अवस्थाओंसे अतीतके जीवनकी लालसा जाग्रत् होती है। जिन संकल्पोंसे किसी अप्राप्त वस्तु, अवस्था आदिका आवाहन होने लगता है, वे संकल्प अशुद्ध हैं और त्याज्य हैं, क्योंकि वे जड़ता तथा पराधीनताकी ओर ले जाते हैं और जो संकल्प सभी अवस्थाओंके अतीतके जीवनकी जिज्ञासा जाग्रत् करते हैं, वे शुद्ध संकल्प हैं। यह नियम है कि अशुद्ध संकल्प मिट जानेपर शुद्ध संकल्प स्वतः पूरे हो जाते हैं।

अशुद्ध संकल्पोंके त्यागमें शुद्ध संकल्पोंकी पूर्तिकी सामर्थ्य निहित है और शुद्ध संकल्पोंकी पूर्तिके सुखके त्यागमें निर्विकल्प होनेका सामर्थ्य निहित है। निर्विकल्पता आ जानेपर सुख-दुःख गलकर चिरशान्तिमें विलीन हो जाते हैं और चित्तकी अशुद्धि स्वतः मिटने लगती है।

अनावश्यक तथा अशुद्ध संकल्पोंके त्यागसे चित्त-शुद्धिकी साधना आरम्भ होती है। प्राकृतिक नियमके अनुसार अशुद्ध संकल्पोंके त्यागसे उन शुद्ध संकल्पोंकी पूर्ति स्वतः हो जाती है, जिनका राग संकल्प-पूर्तिके बिना मिट ही नहीं सकता। अनावश्यक संकल्प शुद्ध ही क्यों न हों, पर वे परिस्थितिके अनुरूप आवश्यक शुद्ध संकल्पोंकी पूर्तिमें बाधक होते हैं; क्योंकि अनावश्यक संकल्पोंसे प्राप्त शक्तिका ह्रास हो जाता है। जो शक्ति शुद्ध संकल्पोंकी पूर्तिके लिये मिली थी, वह व्यर्थ ही नष्ट हो जाती है। इस दृष्टिसे अनावश्यक संकल्पोंका त्याग अनिवार्य है। अशुद्ध संकल्पोंसे अकर्तव्यका जन्म होता है, जो कर्तव्य-परायणतासे तो विमुख कर ही देता है, साथ ही अवनतिकी ओर भी ले जाता है अर्थात् वर्तमान वस्तुस्थितिसे भी गिरावटकी ओर ले जाता है। इस दृष्टिसे अशुद्ध और अनावश्यक, दोनों ही प्रकारके संकल्प त्याज्य हैं।

नवसंवत्सर

(प्रो० श्रीगिरिजाशंकरजी शास्त्री)

कालकी उपासना परब्रह्मकी उपासना है। कलनात्मक काल ब्रह्मकी श्वास है, इसीको भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें '**कालः कलयतामहम्**' अर्थात् गणनायोग्य काल मैं ही हूँ, कहा है। सम्पूर्ण विश्वमें कालगणनाके अपने-अपने मानक हैं, किंतु भारतीय मनीषियोंने कालका जितना सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन किया है, वह सर्वश्रेष्ठ है। ज्योतिषशास्त्रके मान्य आचार्योंने कालके दो भेद किये—स्थूल एवं सूक्ष्म। कालकी सबसे सूक्ष्मतम इकाई त्रुटिसे लेकर कल्पतकका ज्योतिषशास्त्रमें सफलतम निरूपण किया गया है। एक कल्पमें एक हजार चतुर्युग, चौदह मन्वन्तर और एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगी तथा चारों युगोंके सन्ध्या एवं सन्ध्यांश होते हैं। भारतीय परम्परामें धार्मिक, मांगलिक, सांस्कृतिक कार्योंके लिये सर्वप्रथम संकल्प करनेका विधान है। संकल्पके अन्तर्गत कल्पसे लेकर संवत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार तथा नक्षत्रादिका उच्चारण परमावश्यक माना जाता है। किसी भी धार्मिक कृत्यकी पूर्णता और सफलताके लिये संकल्प एक अनिवार्य प्रक्रिया है। कालगणनाके क्रममें युग-गणनासे छोटी इकाई संवत्सरकी गणना है। आरम्भसे ही संवत्सरका प्रयोग दो रूपोंमें होता रहा है। पहला प्रभव, विभव अथवा जय, विजय आदि साठ संवत्सर तथा दूसरा ब्रह्म, वामन, युधिष्ठिर, बौद्ध तथा विक्रम शालिवाहनीय शक आदि। संवत्सरको हायन, अब्द, वर्ष, वत्सर, शरद्, वसन्त तथा कालग्रन्थि भी कहा जाता है। एक संवत्सरमें छहों ऋतुओंके होनेसे इसे ऋतुवृत्ति भी कहते हैं। **'संवसन्ति ऋतवो यत्र स संवत्सरः'** अर्थात् जिसमें ऋतु तथा काल आदि निवास करते हैं, वही संवत्सर है। संवत्सरकी उत्पत्ति वर्षगणनाके लिये होती है। ऋतु, मास, पक्ष, तिथि आदि संवत्सरके ही अंग हैं। भारतीय ज्योतिषशास्त्रमें प्रसिद्ध नौ प्रकारके कालमान ब्राह्म, पितृ, दैव, प्राजापत्य, गुरु, सौर, सावन, चान्द्र तथा नाक्षत्र आदि संवत्सरके बोधक ही हैं। किंतु संवत्सर-गणनाके लिये सौर, चान्द्र, बार्हस्पत्य तथा नाक्षत्र वर्ष ही प्रयोगमें आते हैं।

जितने समयमें सूर्य नक्षत्रमण्डलके किसी भी बिन्दुसे आगे बढ़ता हुआ पुनः उसी बिन्दुपर आ जाता है अर्थात् ३६० डिग्री पूर्ण कर लेता है, व्यवहारमें उसीको हम वर्ष कहते हैं। चान्द्र वर्ष चन्द्रमाकी गतिसे होता है, यह ३५४ दिनोंका होता है। चन्द्रमाकी अति शीघ्र गति होनेसे प्रत्येक तीसरे वर्ष अधिमासद्वारा सन्तुलन बन जाता है। ऐसे बृहस्पतिकी गतिसे बार्हस्पत्य ३६१ दिनोंका वर्ष होता है। इससे सौरवर्षका सम्बन्ध ठीक बना रहे, अतः प्रायः पचासी वर्षके बाद एक संवत्सरको लुप्त करके सामंजस्य स्थापित कर दिया जाता है। एक सूर्योदयसे अगले सूर्योदयके कालको नाक्षत्र दिन कहा जाता है। यह प्रतिदिन चौबीस घण्टेमें लगभग चार मिनट कम हो जाता है। इस तरह सूर्यका एक वर्ष ३६५ दिन जबकि नक्षत्रका वर्ष ३६६ दिनोंका होता है। कालगणनाके लिये यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारतीय कालगणनाओंमें अलग-अलग मान होते हुए भी सभीका सामंजस्य अत्यन्त सूक्ष्म गणनाद्वारा सर्वदाके लिये सन्तुलित बना दिया गया है।

संवत्सरका मानवीकरण करते हुए वेद कहते हैं- जब दिनरात्रिका मान समान होता है, उसीको विषुव दिन या विषुवान् काल कहा जाता है, वसन्त सम्पातका प्रथम दिवस ही संवत्सरकी आत्मा है। वसन्त सिर है, वसन्त पैर है, वसन्त उसका दाहिना भाग तथा शरद् बायाँ भाग है। दिन एवं रात्रि उसके दो चरण हैं, बारहों महीने उसके विभिन्न अंग-प्रत्यंग हैं। दो पक्ष ही उसके हाथ हैं। नक्षत्र नेत्र हैं। लव, निमेष, कला, काष्ठा सभी कान हैं। कुल ७२० दिन एवं रात्रियाँ नस-नाड़ियाँ हैं। इसी आधारपर संवत्सर पुरुषके सभी अंगोंमें नक्षत्रों एवं राशियोंकी स्थापना करके ज्योतिर्विद् पापग्रहपीड़ित भागसे वर्षपर्यन्त विश्वमें घटनेवाली सभी घटनाओंका विवेचन संहिता ज्योतिषके आधारपर करते हैं। सूक्ष्मसे स्थूलतक कालविवेचनमें सूर्य एवं चन्द्रमाका ही योगदान है। सूर्य एक वर्षमें ज्योतिश्चक्रकी एक परिक्रमा पूर्ण करता है, जबकि इसी एक वर्षमें चन्द्रमा बारह बार परिक्रमा कर लेता है। अतः सूर्यके एक

भगणके परिक्रमाकालको संवत्सर एवं चन्द्रमाके कालको द्वादश मासकी संज्ञा दी गयी है। द्वादश मासकी समष्टि ही संवत्सर है।

चान्द्रमास अमान्त ही होता है न कि पूर्णिमान्त। श्रीपति भट्टने कहा है—'**दर्शावधिं कामुशन्ति चान्द्रम्।**' प्रश्न उठता है कि पूर्णिमा या पूर्णमासीमें तो पूर्ण शब्द है, चन्द्रमा पूर्ण भी दिखायी देता है तब अमावस्याको मास पूर्ण होना क्यों कहा। इस प्रश्नका उत्तर है कि अमाका अर्थ है कला तथा मासीका अर्थ चन्द्रमा है। अतः कला या चन्द्रकी पूर्णता ही पूर्णिमा या पूर्णमासी है और चान्द्रमास अमावस्याको ही सम्पन्न होता है। **षोडश कलो वै चन्द्रमा स एव संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः।**

इसीलिये चन्द्रवंशमें अवतरित होनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको सोलहकलापूर्ण ब्रह्मका अवतार माना गया है। अतः चान्द्र संवत्सर ही सर्वश्रेष्ठ संवत्सर है। काल प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है, तदनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं प्रकृति भी सतत नित्य परिवर्तित होती हुई नवीनताको प्राप्त करती रहती है, यही प्रकृतिकी रमणीयता है। वेद कहते हैं कि परमात्माकी इस सृष्टि-रचनाको देखें, जो न कभी वृद्ध होती है और न ही कभी मरती है—**पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति**। अस्तु! एक संवत्सरकी सम्पूर्ण आयु है, चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे चैत्र कृष्ण अमावस्यातक। इसी संवत्सरके पहले दिन भगवान् विष्णुके दशावतारोंमें प्रथमावतार मत्स्यावतार हुआ था। प्रथम दिनसे ही आद्याशक्ति दुर्गाकी आराधना, शक्तिपूजा तथा नवसस्येष्टि यज्ञ, हवन-पूजनके साथ नवीन कार्य आरम्भ हो जाते हैं। सनातन संस्कृतिकी परम्परामें आदि, मध्य एवं अन्तमें भगवत्स्मरण, भजनकी प्रधानता रहती है। अतः संवत्सरारम्भके प्रथम मास चैत्रमें भगवान् श्रीरामका प्राकट्य, संवत्सरके मध्य भादौं मासमें श्रीकृष्णावतार तथा अन्तिममास फाल्गुनमें भगवान् शिवकी पूजा शिवरात्रि पर्वमें तथा संवत्सरकी विदाई भी होलिकादाहके साथ सम्पन्न हो जाती है।

प्रत्येक संवत्सरका प्रारम्भ चैत्रमास शुक्लपक्ष प्रतिपदासे होता है। यही कल्पका प्रथम दिन तथा सत्ययुगके प्रारम्भका भी प्रथम दिन होनेसे इसे कल्पादि तथा युगादि भी कहते हैं। इसका प्रारम्भ युगादिसे होते हुए भी इसके नामकरणको प्रत्येक कालखण्डमें हुए उन महाप्रतापी राजाओंके साथ जोड़कर किया गया, जिन्होंने अपने सम्पूर्ण राज्यमें प्रजाको ऋणमुक्त कर दिया था। जैसे महाराज युधिष्ठिर, विजयाभिनन्दन, नागार्जुन, विक्रमादित्य तथा शालिवाहन आदि। ये सभी संवत् सर्वदा चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे ही प्रारम्भ होते रहे हैं। इसका मूल कारण बताते हुए व्यासजी कहते हैं—

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रे तु तदा सूर्योदये सति॥

चैत्रमासकी विशेषता अन्य महीनोंकी अपेक्षा क्यों अधिक है और इस मासमें नवसंवत्सर क्यों मनाया जाता है? इस सन्दर्भमें विद्वानोंका कथन है कि सनातन धर्मकी दृष्टिमें चैत्रमाससे विधाताकी सृष्टि प्रारम्भ हुई थी। यह मास उत्पत्ति एवं प्रलय दोनोंका विधान करता है। इसकी अमावस्या तिथि पूर्व संवत्सरकी समाप्तिका तथा शुक्ल प्रतिपदा नवसंवत्सरके जीवनके आरम्भका संकेतक है। यह सामान्य मासोंकी भाँति नहीं है। यह सभी महीनोंका मुकुटमणि है। यह वह मास है, जिसमें उद्विग्न एवं निराश मानवोंके हृदयमें प्रकृति नवीन आशाका संचार करती हुई, बिना कहे ही गणनाके बिना भी नववर्षके आगमनकी सूचना दे देती है।

आज भी भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके दिन नवसंवत्सरको मनानेकी परम्परा अक्षुण्ण बनी हुई है। दक्षिण भारतमें गुडीपरवा, आन्ध्र तथा तमिलमें उगादि, सिन्धी समाजमें चेटीचण्ड, काश्मीरमें नवरोज तथा अन्य सभी प्रान्तोंमें नवसंवत्सरारम्भ-महोत्सवके रूपमें मनानेकी परम्परा अद्यतन चल रही है। आजके दिन धर्मशास्त्र एवं आयुर्वेदके अनुसार नीमकी कोमल पत्तियोंको चूर्ण बनाकर समान मात्रामें जीरा, हींग, अजवायन तथा सेंधा नमक मिलाकर सेवन करनेसे लोग वर्षपर्यन्त निरोगी रहते हैं। आज नववर्षके पहले दिन स्वस्तिक आदि मांगलिक चिह्नोंसे युक्त ध्वजाको घरमें लगाना, तोरणादिसे गृहोंको सजाना, स्नानोपरान्त नवीन वस्त्र धारणकर इष्टदेव, गुरुदेव तथा देवी दुर्गाकी आराधना, पंचांग-श्रवण एवं कीर्तन-भजन, जप, पाठ करनेसे सम्पूर्ण वर्ष सुखमय व्यतीत होता है।

जब प्रेम स्वयं प्रार्थना बन जाय

(पूज्य सन्त श्रीजानकीनन्दनदासजी महाराज)

अध्यात्मके पथपर दो धाराएँ साथ-साथ बहती हैं। एक धारा वह है, जो विधि, मन्त्र, उच्चारण और अनुशासनसे निर्मित होती है। यह आवश्यक है, क्योंकि यह साधकको दिशा देती है। पर दूसरी धारा उससे भी सूक्ष्म है। वह हृदयकी तहोंमें जन्म लेती है, जहाँ कोई शास्त्रीय विधि नहीं पहुँच सकती, वह धारा है आँसुओंकी पहली धारा हमें धर्मका अभ्यास कराती है। दूसरी धारा हमें भगवान्‌के स्पर्शतक ले जाती है।

संसारकी दृष्टिमें आँसू अस्थिरताके प्रतीक हो सकते हैं, पर प्रभुकी देहरीपर वही सबसे सच्चा सन्तुलन हैं; क्योंकि आँसू तब बहते हैं जब भीतरका कृत्रिम सन्तुलन टूटता है और आत्मा अपने वास्तविक केन्द्रकी ओर लौटती है।

भक्तिका एक स्तर वह है, जहाँ हम प्रभुके बारेमें सोचते हैं। दूसरा स्तर वह है, जहाँ हम प्रभुको पुकारते हैं। और एक तीसरा स्तर है, जहाँ पुकार भी समाप्त हो जाती है, केवल भीगना शेष रह जाता है। वहाँ शब्द रुक जाते हैं। वहाँ वाणी असहाय हो जाती है। जो अनुभव भीतर उठ रहा होता है, वह भाषामें समा नहीं सकता, और वही क्षण आँसुओंमें व्यक्त होता है। इसीलिये कहा गया—

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥

(रा०च०मा० २।१३७।१)

प्रेम ही सेतु है। पर प्रेमका स्वरूप क्या है? वह अधिकार नहीं है। वह प्रदर्शन नहीं है। वह एक आन्तरिक पिघलन है। जबतक हृदय स्वयंको सुरक्षित रखता है, भक्ति बाहर रहती है। जिस दिन हृदय स्वयंको जोखिममें डाल देता है, उसी दिन भक्ति भीतर प्रवेश करती है।

माता शबरीकी प्रतीक्षा केवल कथा नहीं है, वह भक्तिका शास्त्र है। वर्षोंतक उन्होंने समयको नहीं जिया, उन्होंने प्रतीक्षाको जिया, प्रतीक्षाका अर्थ है— हर दिन उसी आशाके साथ उठना कि आज मेरा राम आयेगा। यह आशा तर्कपर आधारित नहीं थी, यह हृदयकी सच्चाईपर आधारित थी। जब श्रीराम आये, तो शबरीजीके पास देनेको कुछ विशेष नहीं था, पर जो था, वह पूर्ण था। उनके नेत्रोंकी नमीने ही उनके आश्रमको तीर्थ बना दिया और प्रेमने हर वस्तुको पवित्र किया।

आजका मनुष्य स्थिर दिखना चाहता है। वह टूटना नहीं चाहता, उसे भय है कि यदि वह रोया तो कमजोर समझा जायगा, पर भक्तिका विज्ञान उलटा है। यहाँ जो टूटता है, वही बनता है। जो पिघलता है, वही ढलता है। जो रोता है, वही वास्तवमें प्रेमी हो पाता है। गीतामें कहा गया—**भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।** (गीता १८।५५) तत्त्वसे जानना बौद्धिक प्रक्रिया नहीं है। तत्त्वसे जानना अस्तित्वकी प्रक्रिया है। जबतक 'मैं' अपने बलपर खड़ा है, तबतक प्रभुका अनुभव सीमित रहता है। जिस दिन 'मैं' भीगकर नरम हो जाता है, उसी दिन अनुभवकी भूमि तैयार होती है।

सीतारामजीका स्मरण केवल नामका उच्चारण नहीं है। राम मर्यादाका शिखर हैं और सीता श्रद्धाकी गहराई। जब श्रद्धा मर्यादाके वियोगमें तड़पती है, तब जो रस उत्पन्न होता है, वही भक्तिरस है। यह रस मनको शिथिल नहीं करता, यह मनको शुद्ध करता है। इस शुद्धतामें आँखें स्वाभाविक रूपसे भीगती हैं। यह आँसू दुःखके नहीं, जागरणके हैं।

आँसू आध्यात्मिक रसायन हैं। वे अहंकारकी कठोरताको गलाते हैं। वे भीतर जमा वर्षोंकी धूलको धोते हैं। वे साधकको यह अनुभव कराते हैं कि प्रभु कोई विचार नहीं, एक जीवित उपस्थिति हैं। जिस दिन साधकको यह अनुभव हो जाय कि मैं अकेला नहीं हूँ, उसी दिन आँसूकी पहली बूँद गिरती है। और वही बूँद साधनाकी दिशा बदल देती है।

मन्दिरोंमें अभिषेक बाहरी है। वह आवश्यक है; क्योंकि वह श्रद्धाको अभिव्यक्त करता है। पर एक

आन्तरिक अभिषेक भी होता है। जब नेत्रोंका जल प्रभुके स्मरणमें बहता है, तब वह अभिषेक आत्मापर होता है। वहाँ मूर्ति बाहर नहीं, हृदयके भीतर है। वहाँ जल बाहरसे नहीं, भीतरसे आता है।

यह भी समझना आवश्यक है कि आँसू लक्ष्य नहीं हैं। लक्ष्य है वह प्रेम, जो आँसुओंको जन्म देता है। यदि कोई केवल रोनेका अभिनय करे, तो वह भक्ति नहीं। पर यदि कोई भीतरसे भर जाय और आँखें स्वयं गवाही दें, तो वह साक्षात् साधना है।

अन्ततः भक्तिका सार यही है कि मनुष्य स्वयंको प्रभुके सामने असहाय स्वीकार कर ले, जब यह स्वीकार पूर्ण होता है, तब शब्दोंकी आवश्यकता नहीं रहती, वहाँ मौन ही प्रार्थना बन जाता है और आँसू ही मन्त्र; इसलिये यदि कभी सियारामका स्मरण करते हुए भीतरसे एक तरंग उठे और नेत्र स्वयं भीग जायँ, तो उसे दबाइये मत। वही वह क्षण है, जब प्रेमने प्रार्थनाका रूप ले लिया है। वही आँसुओंकी वर्णमाला है, जिससे आत्मा अपना पहला सच्चा वाक्य लिखती है।

बोध-कथा—

बहूके सद्भावका असर

पुत्रकी उम्र पैंतीससे पचास छूने लगी। पिता पुत्रको व्यापारमें स्वतन्त्रता नहीं देता था, तिजोरीकी चाबी भी नहीं। पुत्रके मनमें यह बात खटकती रहती थी। वह सोचता था कि यदि मेरा पिता पन्द्रह-बीस वर्षतक और रहेगा तो मुझे स्वतन्त्र व्यापार करनेका कोई अवसर नहीं मिलेगा। स्वतन्त्रता सबको चाहिये। मनमें चिढ़ थी, कुढ़न थी। एक दिन वह फूट पड़ी। पिता-पुत्रमें काफी बकझक हुई। सम्पदाका बँटवारा हुआ। पिता अलग रहने लगा। पुत्र अपनी पत्नी और बच्चोंके साथ अलग रहने लगा।

पिता अकेले थे। उनकी पत्नीका देहान्त हो चुका था। किसी दूसरेको सेवाके लिये नहीं रखा; क्योंकि उनके स्वभावमें किसीके प्रति विश्वास नहीं था, यहाँतक कि पुत्रके प्रति भी नहीं था। वे स्वयं ही अपने हाथसे रूखा-सूखा भोजन बनाकर कर लेते, कभी चना-चबैना खा लेते, कभी भूखे सो जाते। जब उनकी पुत्रवधूको यह बात मालूम पड़ी तो उसे बहुत दुःख हुआ। आत्मग्लानि भी हुई। उसे बाल्यकालसे ही धर्मका संस्कार था—बड़ोंके प्रति आदर एवं सेवाका भाव था। उसने अपने पतिको मनानेका प्रयास किया, परंतु वे न माने। पिताके प्रति पुत्रके मनमें कोई सद्भाव नहीं था। अब बहूने एक विचार अपने मनमें दृढ़ कर लिया और कार्यान्वित किया। वह पहले रोटी बनाकर अपने पति और पुत्रको खिलाकर दूकान और स्कूल भेज देती, फिर स्वयं श्वशुरके घर चली जाती। वहाँ भोजन बनाकर श्वशुरको खिला देती और सायंकालके लिये पराठे बनाकर रख देती।

कुछ दिनोंतक ऐसा ही चलता रहा। जब पतिको मालूम पड़ा तो उसने रोका—'ऐसा क्यों करती हो? बीमार पड़ जाओगी। आखिर शरीर ही तो है, कितना परिश्रम सहेगा।' बहू बोली—'मेरे ईश्वरके समान आदरणीय श्वशुरजी भूखे रहें, तकलीफ पायें और हम लोग आरामसे खायें-पीयें, मौज करें, यह मुझसे नहीं हो सकता, मेरा धर्म है बड़ोंकी सेवा करना—इसके बिना मुझे सन्तोष नहीं है, बड़ी ग्लानि है। मैं उन्हें खिलाये बिना खा नहीं सकती। भोजनके समय उनकी याद आनेपर मुझे आँसू आने लगते हैं। उन्होंने ही तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है, तब तुम मुझे पतिके रूपमें मिले हो। तुम्हारे मनमें कृतज्ञताका भाव नहीं है तो क्या हुआ; मैं उनके प्रति कैसे कृतघ्न हो सकती हूँ?'

पत्नीके सद्भावने पतिपर विजय प्राप्त कर ली। उन्होंने जाकर अपने पिताके चरण छुए, क्षमा माँगी, घर ले आये—पति-पत्नी दोनों पिताकी सेवा करने लगे। पिताने व्यापारका सारा भार पुत्रपर छोड़ दिया। वे अब पुत्रके किसी कार्यमें हस्तक्षेप नहीं करते थे।

परिवारके किसी भी व्यक्तिमें यदि सच्चा सद्भाव हो तो वह सबके मनको जोड़ सकता है। मनका मेल ही सच्चा पारिवारिक सुख है। [ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज]

भगवान्‌के साथ एक नाता

'बरसाना' में एक भक्त थे ब्रजदास। उनके एक पुत्री थी, नाम था रतिया। यही ब्रजदासका परिवार था। ब्रजदास दिनमें अपना काम करते और शामको श्रीजीके मन्दिरमें जाते, दर्शन करते और जो भी सन्त आये हुए हों, उनके साथ सत्संग करते। यह उनका नियम था।

एक बार एक सन्तने कहा—'भैया! हमें नन्दगाँव जाना है। सामान ज्यादा है, पैसे हैं नहीं, नहीं तो सेवक कर लेते। तुम हमको नन्दगाँव पहुँचा सकते हो क्या?' ब्रजदासने 'हाँ' भर दी। ब्रजदासने कहा—गर्मीका समय है, सुबह जल्दी चलना ठीक रहेगा, जिससे मैं १० बजेतक वापस आ जाऊँ। सन्तने भी कहा, 'ठीक है, मैं ४ बजे तैयार मिलूँगा।'

ब्रजदासने अपनी बेटीसे कहा—मुझे एक सन्तको नन्दगाँव पहुँचाना है। समयपर आ जाऊँगा, प्रतीक्षा मत करना।

ब्रजदास सुबह चार बजे 'राधे-राधे' करते नंगे पाँव सन्तके पास गये। सन्तने सामान ब्रजदासको दिया और ठाकुरजीकी पेटी एवं बर्तन स्वयं लिये। रवाना तो समयपर हुए, लेकिन सन्तको श्वास रोग था, कुछ दूर चलते, फिर बैठ जाते। इस प्रकार नन्दगाँव पहुँचनेमें ही ११ बजे गये। ब्रजदासने सामान रखकर जानेकी आज्ञा माँगी। सन्तने कहा—'जूनका महीना है, ११ बजे हैं, जल पी लो। कुछ जलपान कर लो, फिर जाना।'

ब्रजदासने कहा—बरसानेकी वृषभानुनन्दिनी नन्दगाँवमें ब्याही हुई हैं। गाँवाभाईके नाते वे मेरी बेटी हैं, अत: मैं यहाँ जल नहीं पी सकता। सन्तकी आँखोंसे अश्रुपात होने लगा। द्वापरयुगमें राधाजीका ब्याह हुआ था, पर ब्रजदासके लिये तो नन्दगाँव आज भी बेटीकी ससुराल ही है, उसके घरका पानी कैसे पीयें? कितना गरीब आदमी है, पर दिल कितना ऊँचा है।

ब्रजदास वापस 'राधे-राधे' करते रवाना हुए। ऊपरसे सूरजकी गर्मी नीचे तपती रेत! भगवान्‌को दया आ गयी। वे भक्त ब्रजदासके पीछे-पीछे चलने लगे। एक पेड़की छायामें ब्रजदास रुके और वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़े। भगवान्‌ने मूर्च्छा दूर करनेके प्रयास किये, पर मूर्च्छा दूर नहीं हुई। भगवान्‌ने विचार किया कि मैंने अजामिल, गीध, गजराजको तारा, द्रौपदीको संकटसे बचाया, पर इस भक्तके प्राण संकटमें हैं और कोई उपाय नहीं लग रहा है। ब्रजदास राधारानीका भक्त है, वे ही इसके प्राणोंकी रक्षा कर सकती हैं। उनको ही बुलाया जाय। भगवान् भरी दुपहरीमें राधारानीके पास महलमें गये। राधारानीने इस गर्मीमें आनेका कारण पूछा। भगवान् भी पूरे मसखरे हैं।

उन्होंने कहा—तुम्हारे पिताजी बरसाना और नन्दगाँवकी डगरमें पड़े हैं, तुम चलकर सँभालो।

राधाजीने कहा—कौन पिताजी? भगवान्‌ने सारी बात समझायी और चलनेको कहा। यह भी कहा कि तुमको ब्रजदासकी बेटीके रूपमें भोजन-जल लेकर चलना है। राधाजी तैयार होकर पहुँचीं। 'पिताजी-पिताजी' आवाज लगायी।

ब्रजदास जागे। बेटीको वहाँ देखकर चकित हो कहने लगे—आज तू न आती तो प्राण चले जाते। फिर बेटीसे कहा—आज तुझे बार-बार देखनेका मन कर रहा है। राधाजीने कहा—माँ-बापको सन्तान अच्छी लगती ही है। आप भोजन कर लीजिये। ब्रजदास भोजन करने लगे तो राधाजीने कहा—घरपर कुछ मेहमान आये हैं, मैं उनको सँभालूँ, आप आ जाना। कुछ दूरीके बाद राधारानी अदृश्य हो गयीं। ब्रजदासने ऐसा भोजन कभी नहीं पाया।

शामको घर आकर ब्रजदास बेटीके चरणोंमें गिर पड़े। बेटीने कहा—आप ये क्या कर रहे हैं? ब्रजदासने कहा—आज तुमने भोजन-जल लाकर मेरे प्राण बचा लिये। बेटीने कहा—मैं तो कहीं नहीं गयी। ब्रजदासने कहा—अच्छा बता, मेहमान कहाँ हैं? बेटीने कहा—कोई मेहमान नहीं आया। अब ब्रजदासकी समझमें सारी बात आयी। उसने बेटीसे कहा कि आज तुम्हारे ही रूपमें राधा-रानीके दर्शन हुए। [प्रेषक—श्रीगोवर्धनलालजी झँवर]

परमार्थतः अजर-अमरके लिये रोना व्यर्थ

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

श्रीभगवान् ही सार और सत्य वस्तु हैं। उन्हींसे मुख्य सम्बन्ध मानना उत्तम है। संसारके अन्यान्य सम्बन्धियोंका कुछ भी ठिकाना नहीं है। कर्मवश जीवात्मा अनादि कालसे अनन्त योनियोंमें भटकता रहा है। उनमेंसे उसका अनेक देशों, कालों, व्यक्तियों एवं वस्तुओंसे सम्बन्ध बनता और बिगड़ता रहता है। भगवान्‌की मायाका यह वैचित्र्य है कि प्राणीको नये जन्मके ही कुछ व्यक्तियों एवं वस्तुओंका सम्बन्ध स्मृत रहता है, अन्यान्य जन्मोंकी सब बातें प्रायः भूल ही जाती हैं। जब अविवेकी प्राणी एक ही जन्मके सम्बन्धियोंको स्मरण करके उनके शोक-मोहमें डूबकर रोता रहता है, तब फिर सबका बोध रहनेपर तो किस-किसके दुःखके लिये कितना रोया जाय!

इस सम्बन्धमें श्रीवसिष्ठजीने श्रीरामजीसे एक दृष्टान्त देकर कहा—रघुनन्दन! महेन्द्र नामक पर्वतपर दीर्घतपा नामक एक महर्षि अपनी पत्नीके साथ निवास करते थे। वे तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनके पुण्य और पावन नामके दो पुत्र थे। समय बीतनेपर उनका ज्येष्ठ पुत्र पुण्य सम्यक् ज्ञानसे सम्पन्न हो गया, किंतु छोटा पुत्र पावन यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ रहा। महर्षि दीर्घतपाने यथासमय अपना शरीर त्याग दिया और माताने भी यौगिक क्रियाद्वारा महर्षिका अनुसरण किया। माता-पिताके दिवंगत हो जानेपर ज्येष्ठ पुत्र धैर्यपूर्वक विवेकसे स्थिरचित्त हो अपना कर्तव्य करता रहा, किंतु रागमें आसक्त पावनका चित्त शोकसे व्याकुल हो गया, वह घूम-घूमकर विलाप करने लगा तथा शोकसंविग्न हो वनमें चला गया और वहीं रहने लगा। माता-पिताकी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्नकर पुण्य वनमें आया और शोकाकुल भाईके पास आकर कहने लगा—वत्स! यह शोक अन्धता (मोह)-का एकमात्र कारण है, तुम इसे घनीभूत क्यों बना रहे हो? महाप्राज्ञ! तुम्हारे पिता तुम्हारी माताजीके साथ उस मोक्ष नामक सच्चिदानन्दघन परमात्मपदको प्राप्त हो गये हैं, जो सबका स्वरूप है, वही सभी प्राणियोंका अधिष्ठान है और वही जितात्मा ब्रह्मवेत्ताओंका स्वरूप है। जब पिता अपने स्वरूपको प्राप्त हुए हैं तो तुम उनके लिये बारम्बार शोक क्यों करते हो? तुमने संसारमें मोहजनित ममता बाँध रखी है, इसीलिये तुम शोक कर रहे हो। भैया! यह संसार मायाका विलास केवल स्वप्न ही है। हम, तुम, संसार—ये सब कल्पनाएँ दुर्दृष्टि ही हैं, परमार्थतः केवल सर्वसाक्षी सर्वाधिष्ठान ब्रह्म ही तत्त्व है। विचार करनेपर माता, पिता, बन्धु—सब कल्पना व्यर्थ है। यदि ये वस्तुएँ हों तो फिर जन्मान्तरके सभी बन्धुओंके लिये रोना चाहिये। फिर तो पिछले किन्हीं जन्मोंमें तुम सुपुष्पित वनस्थलीमें वृक्ष थे, कभी सिंह, कभी मत्स्य, कभी वानर, कभी वनवायस, कभी गर्दभ तो कभी पक्षी हुए थे, तबके बन्धुओंका भी स्मरण करो। कभी विन्ध्यपर्वतपर प्रियाल हुए थे, कभी महावटके घुण हुए थे, तो कभी मन्दराचलपर कुक्कुट हुए थे, फिर बर्फीले ऊश्म हुए, ताल-कन्दके भीतर तथा उदुम्बरके भीतरके कीट भी तुम हो चुके हो। इसी तरह कहाँतक गिनायें, कितने ही तुम्हारे जन्म हुए हैं।

मेरा भी यही हाल है, मैं भी त्रिगर्तमें पहले उत्पन्न हुआ, मेढक बना, फिर वनकालावन पक्षी, विन्ध्यमें चातक, व्याघ्र और गृध्र बना, फिर सिंह बना। आज वही मैं तुम्हारा अग्रज हूँ। विविध जन्म, विविध संस्कार, विविध चेष्टाएँ—सब-की-सब केवल भ्रान्ति हैं।

कहना केवल इतना ही है कि अनन्त जन्मोंके अनन्त सुख-दुःख तथा सुख-दुःखकी सामग्रियों—बन्धु-बान्धवोंका कौन स्मरण करे और कौन कितना, किस-किसके लिये रोना रोये। परमार्थतः आत्मा सदा अजर-अमर एकरस है। आत्मा परमानन्द कूटस्थस्वरूप है। अतः उसीमें प्रतिष्ठित होकर तद्भिन्नका संकल्प-चिन्तन छोड़ना ही श्रेयस्कर है।

पाण्डवोंका स्वरूप

(गोलोकवासी परम भागवत सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)

पाण्डवोंने धर्मको छोड़ा नहीं है। अपना धर्म कभी छोड़ना नहीं, दूसरेकी नकल कभी करना नहीं। हमारा धर्म हमारे लिये श्रेष्ठ है। महाभारतमें पाण्डवोंका स्वरूप समझाया गया है—

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन
पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन।
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन
माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः॥

अर्जुन नर हैं, भगवान् श्रीकृष्ण नारायण हैं—यह नर-नारायणकी जोड़ी है। महाभारतमें वर्णन आया है—श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनके सारथी हुए हैं। सारथी होनेका अर्थ है—नौकर होना। जो जगत्का मालिक है, जो लक्ष्मीका पति है—वह अर्जुनका नौकर हो जाता है। गीताजीके आरम्भमें अर्जुन बोलता है—'**सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत**'—मेरा रथ वहाँ ले जाओ। जैसे कोई मालिक अपने नौकरको कहता है—मेरी गाड़ी वहाँ ले जाओ।

भगवान् अर्जुनके नौकर क्यों हुए? अर्जुनमें ऐसा कौन-सा सद्गुण है कि जो जगत्का मालिक है, वह अर्जुनका नौकर हुआ है? अर्जुनमें एक ही बड़ा सद्गुण है—अर्जुन धर्मको बड़ा भाई मानता है, धर्म ही मेरा भाई है। महाभारतके वन-पर्वमें प्रसंग आता है—पाण्डव राजमहलमें रहते थे, सुखी थे; वनवासमें अति दुखी हुए हैं। दुःखमें एक बार भीमसेनने धर्मराजको सुनाया है—'भैया! आप जुआ खेलनेके लिये गये, इसीलिये यह दुर्दशा हुई है।' भीमसेन आवेशमें बोले, तब अर्जुन भीमको समझाते हैं—'भैया! कभी ऐसा बोलना नहीं, बड़े भइया जो करते हैं, वह उचित ही होता है।' धर्म ही बड़ा भाई है। धर्मराज धर्म समझ करके जुआ खेलते हैं। कपटसे दुर्योधन जुआ खेलता है—इसीलिये हारे हैं।

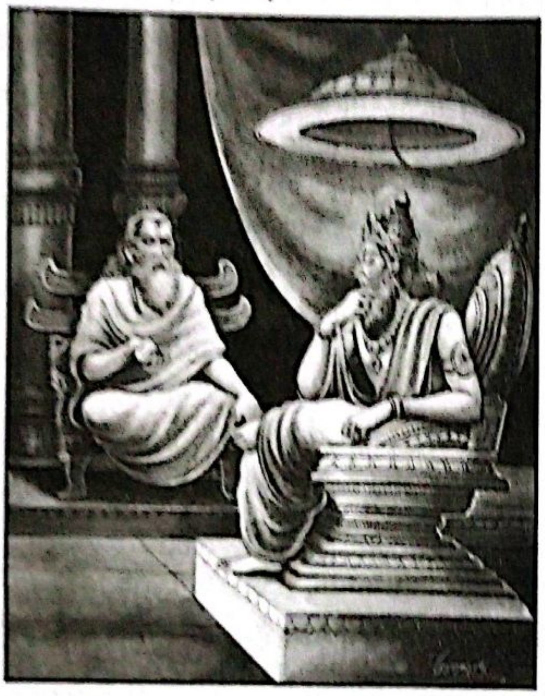
धर्मको बड़ा भाई मानो—आपके सारथी श्रीकृष्ण हो जायँगे। शरीर ही जीवात्माका रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं। इन्द्रियोंकी लगाम भगवान्के हाथमें दे दो। भगवान्के हाथमें लगाम न हो, तो ये इन्द्रियरूपी घोड़े रथको गड्ढेमें फेंक देंगे।

वेदोंने जो वर्णन किया है, वही महाभारतमें व्यास महर्षिने वर्णन किया है। वेदोंमें वर्णन आता है—जीव और ईश्वर दोनों साथमें रहते हैं। नर-नारायणकी जोड़ी है—साथमें ही रहते हैं। अर्जुन नर है, श्रीकृष्ण नारायण हैं—रथमें बैठे हैं। अर्जुन जीव है, युधिष्ठिर महाराज धर्मकी मूर्ति हैं, भीमसेन बल है, नकुल ज्ञान है, सहदेव बुद्धि है—पंच-पाण्डवोंके साथ द्रौपदीका लग्न हुआ है। द्रौपदीके पाँच पति हैं? पाण्डव एक ही हैं—द्रौपदीके पाँच पति नहीं हैं, एक ही तत्त्वके पाँच नाम हैं—तत्त्व एक ही है। द्रौपदी दयाका स्वरूप है। दयाका लग्न धर्मके साथ हुआ है। जो धर्मिष्ठ है, उसे दयालु होना चाहिये। दयाका साथ न हो तो धर्म—अधर्मके जैसा हो जायगा। दयाका लग्न धर्मके साथ है। युधिष्ठिर महाराज धर्मकी मूर्ति हैं। दया—द्रौपदीका लग्न धर्मराजके साथ हुआ है।

भीमसेन बल है। बलका लग्न दयाके साथ हुआ है। जो बलवान् है, उसे दयालु होना चाहिये। बलवान् निष्ठुर हो जाय तो बल जगत्का विनाश करेगा। बल रक्षण करनेके लिये है, बल विनाश करनेके लिये नहीं है। भीमसेन बलस्वरूप हैं। युधिष्ठिर महाराज धर्मकी मूर्ति हैं। बलके साथ, धर्मके साथ दया—द्रौपदीका लग्न हुआ है।

नकुल ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानीको दयालु होना चाहिये। ज्ञानी पुरुष मानते हैं कि मेरे अन्दर जो भगवान् हैं—वही सर्वमें हैं। दूसरेका दुःख मेरा दुःख है। दूसरेका सुख मेरा सुख है—आत्मा एक है। ज्ञानके साथ दयाका लग्न है। सहदेव बुद्धि है। धर्म, बल, ज्ञान, बुद्धि—चार तत्त्वसे युक्त जो है, वही अर्जुन है। अर्जुन धर्मको बड़ा भाई मानते हैं, इसीलिये भगवान् अर्जुनके सारथी हुए हैं।

जीवनमें सुख-दुःखका कैसा भी प्रसंग आये— अपना धर्म छोड़ना नहीं। जो धर्मको छोड़ता नहीं है, उसको कभी भगवान् छोड़ते नहीं हैं।



विदुरजी धृतराष्ट्रको समझाते हैं—'पाण्डव कदाचित् युद्ध न करें तो श्रीकृष्ण युद्ध करेंगे। श्रीकृष्ण धर्मके पक्षपाती हैं।' युधिष्ठिर महाराज धर्मकी मूर्ति हैं।

महाभारत पढ़नेसे ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण पाण्डवोंका पक्षपात करते हैं। गीताजीमें भगवान् ऐसा बोलते हैं कि मैं सर्वमें समभाव रखता हूँ—**समोऽहं सर्वभूतेषु।** ऐसा बोलनेवाले श्रीकृष्ण कौरवोंमें प्रेम नहीं रखते हैं। दुर्योधनको कपट करके मारा है। कर्णको कपट करके मारा है। कर्णका रथ धरतीमें धँस जाता है। भगवान्ने अर्जुनसे कहा—'मार इसको।' कर्णने कहा है—'मैं अपने रथको बाहर निकालता हूँ। मेरे हाथमें अभी शस्त्र नहीं है। इस समय तू मुझे मारेगा, यह अधर्म-युद्ध है। मैं रथको बाहर निकालता हूँ, हाथमें धनुष-बाण लेता हूँ, फिर मुझे मारना।' अर्जुन विचारमें पड़ जाता है कि मारूँ या नहीं? भगवान्ने कहा है—'क्या देखता है? मार इसको। यह मूर्ख है।'

कर्णसे श्रीकृष्णने अनेक प्रश्न पूछे हैं—'अब तुम्हें धर्म सूझता है? तूने ऐसा कहा था कि द्रौपदीको सभामें ले आओ। उस समय तेरा धर्म कहाँ गया था?' श्रीकृष्ण कर्णसे अनेक प्रश्न पूछते हैं। कर्णके पास जवाब नहीं है। श्रीकृष्ण पूछते हैं—'अनेक वीर पुरुषोंने एक होकर जब अभिमन्युको मार डाला, वह धर्मयुद्ध था? उस समय तेरा धर्म कहाँ गया था?' अर्जुनको कहा है—'मैं कहता हूँ, वही धर्म है—मार इसको। मूर्ख है यह।' धर्मकी जीत हो जाय, इसीलिये श्रीकृष्ण कपट भी करते हैं, झूठ बोलते हैं। धर्मकी हार भगवान्की हार है। भगवान् धर्मकी मूर्ति हैं। धर्मकी हार कभी नहीं होती है।

कलियुगमें ऐसा दिखता है कि अधर्मकी जीत है और धर्मकी हार है। कलियुग अधर्मका प्रतीक है। आज भले ही धर्मकी हार दिखती है, अन्तमें—परिणाममें धर्मकी ही जीत होती है। जिस पक्षमें धर्म है, वहीं श्रीकृष्ण हैं। अपना धर्म कभी छोड़ना नहीं। आपको भगवान् कभी नहीं छोड़ेंगे। जो धर्मको छोड़ता है, भगवान् उसकी उपेक्षा करते हैं।

ब्राह्मण सन्ध्या-गायत्री न करे तो ब्राह्मण अधम है। जो धर्मको छोड़ता है, वह अधम हो जाता है। गुरु द्रोणाचार्य ब्राह्मण हैं—उन्होंने धर्म छोड़ा है, इसीलिये श्रीकृष्णने कपट करके द्रोणाचार्यको मारा है। ज्ञानी हो करके जो धर्म छोड़ता है, उसके ऊपर भगवान् क्रोध करते हैं। द्रोणाचार्य बड़े ज्ञानी हैं। युद्ध करना ब्राह्मणका धर्म नहीं है। द्रोणाचार्य अधर्म करते हैं। ज्ञानी हो करके, ब्राह्मण हो करके उन्होंने धर्म छोड़ा है तो भगवान्ने कपट करके उनको मारा है। भगवान् श्रीकृष्णको ब्राह्मण प्यारे लगते हैं। ब्राह्मणोंकी वे पूजा करते हैं। जो सुदामदेवकी पूजा करते थे, वही श्रीकृष्ण द्रोणाचार्यके साथ कपट करते हैं; क्योंकि द्रोणाचार्यने धर्म छोड़ा है। ज्ञानी हो करके जो धर्म छोड़ता है, उसको भगवान् बहुत सजा करते हैं। कभी अपना धर्म छोड़ना नहीं; क्योंकि भगवान् धर्मके पक्षपाती हैं।

हमारी संस्कृति और हमारे त्योहार—

वैशाखमास-माहात्म्य

न माधवसमो मासो न कृतेन युगं समम्।
न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्॥

(स्कन्दपुराण, वै०वै०मा० २।१)

वैशाखके समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है, वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है और गंगाजीके समान कोई तीर्थ नहीं है। वैशाखमास अपने कतिपय वैशिष्ट्यके कारण उत्तम मास है।

वैशाखमासकी महिमाका वर्णन करते हुए देवर्षि नारदजी महाराज अम्बरीषसे कहते हैं—वैशाखमासको ब्रह्माजीने सब मासोंमें उत्तम सिद्ध किया है। वह माताकी भाँति सब जीवोंको सदा अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाला है। धर्म, यज्ञ, क्रिया और तपस्याका सार है। सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित है। जैसे विद्याओंमें वेद-विद्या, मन्त्रोंमें प्रणव, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, धेनुओंमें कामधेनु, देवताओंमें विष्णु, वर्णोंमें ब्राह्मण, प्रिय वस्तुओंमें प्राण, नदियोंमें गंगाजी, तेजोंमें सूर्य, अस्त्र-शस्त्रोंमें चक्र, धातुओंमें सुवर्ण, वैष्णवोंमें शिव तथा रत्नोंमें कौस्तुभमणि उत्तम है, उसी प्रकार धर्मके साधनभूत महीनोंमें वैशाखमास सबसे उत्तम है। भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला इसके समान दूसरा कोई मास नहीं है। जो वैशाखमासमें सूर्योदयसे पहले स्नान करता है, उससे भगवान् विष्णु निरन्तर प्रीति करते हैं। पाप तभीतक गरजते हैं, जबतक जीव वैशाखमासमें प्रात:काल जलमें स्नान नहीं करता। वैशाखके महीनेमें सब तीर्थ, देवता आदि बाहरके जलमें भी सदैव स्थित रहते हैं। भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये वे सूर्योदयसे लेकर छ: दण्डके भीतर वहाँ उपस्थित रहते हैं।

वैशाख सर्वश्रेष्ठ मास है और शेषशायी भगवान् विष्णुको सदा प्रिय है। सब दानोंसे जो पुण्य होता है और सब तीर्थोंमें जो फल होता है, उसीको मनुष्य वैशाखमासमें केवल जलदान करके प्राप्त कर लेता है। जो जलदानमें असमर्थ है, ऐसे ऐश्वर्यकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह दूसरेको प्रबोध करे, दूसरेको जलदान-का महत्त्व समझाये। यह सब दानोंसे बढ़कर हितकारी है। जो मनुष्य वैशाखमासमें मार्गपर यात्रियोंके लिये प्याऊ लगाता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। प्याऊ देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंको अत्यन्त प्रीति देनेवाला है। जिसने प्याऊ लगाकर रास्तेके थके-माँदे मनुष्योंको सन्तुष्ट किया है, उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंको सन्तुष्ट कर लिया है। राजन्! वैशाखमासमें जलकी इच्छा रखनेवालेको जल, छाया चाहनेवालेको छाता और पंखेकी इच्छा रखनेवालेको पंखा देना चाहिये। राजेन्द्र! जो प्याससे पीड़ित महात्मा पुरुषके लिये शीतल जल प्रदान करता है, वह उतने ही मात्रसे दस हजार राजसूय यज्ञोंका फल पाता है। धूप और परिश्रमसे पीड़ित ब्राह्मणके लिये जो पंखा डुलाकर हवा करता है, वह उतने ही मात्रसे निष्पाप होकर भगवान्‌का पार्षद हो जाता है। जो पदयात्रासे थके हुए श्रेष्ठ द्विजको वस्त्रसे भी हवा करता है, वह उतनेसे ही मुक्त हो भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो शुद्ध चित्तसे ताड़का पंखा देता है, वह सब पापोंका नाश करके ब्रह्मलोकको जाता है। जो विष्णुप्रिय वैशाखमासमें पादुकादान करता है, वह यमदूतोंका तिरस्कार करके विष्णुलोकमें जाता है। जो मार्गमें अनाथोंके ठहरनेके लिये विश्रामशाला बनवाता है, उसके पुण्य-फलका वर्णन नहीं किया जा सकता। मध्याह्नमें आये हुए ब्राह्मण अतिथिको यदि कोई भोजन दे तो उसके फलका अन्त नहीं है।

वैशाखमें तेल लगाना, दिनमें सोना, कांस्यपात्रमें भोजन करना, खाटपर सोना, घरमें नहाना, निषिद्ध पदार्थ खाना, दुबारा भोजन करना तथा रातमें खाना—ये आठ बातें त्याग देनी चाहिये।

तैलाभ्यङ्गं दिवास्वापं तथा वै कांस्यभोजनम्।
खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम्॥
वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम्॥

(स्क०पु० वै०वै०मा० ४।१-२)

जो वैशाखमें व्रतका पालन करनेवाला पुरुष पद्मपत्तेपर भोजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। जो विष्णुभक्त पुरुष वैशाखमासमें नदी-स्नान करता है, वह तीन जन्मोंके पापोंसे निश्चय ही मुक्त हो जाता है। जो सूर्योदयके समय किसी समुद्रगामिनी नदीमें वैशाख-स्नान करता है, वह सात जन्मोंके पापोंसे तत्काल

छूट जाता है। सूर्यदेवके मेषराशिमें आनेपर भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे वैशाखमास-स्नानका व्रत लेना चाहिये। स्नानके अनन्तर भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। स्कन्दपुराणमें आया है कि महीरथ नामक एक राजा था, जो कामनाओंमें आसक्त तथा अजितेन्द्रिय था, वह केवल वैशाख-स्नानके सुयोगसे वैकुण्ठधामको प्राप्त हुआ। वैशाखमासके देवता भगवान् मधुसूदन हैं। उनसे इस प्रकारकी प्रार्थना करनी चाहिये—

मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे रवौ।
प्रातःस्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव॥

'हे मधुसूदन! हे देवेश्वर माधव! मैं मेषराशिमें सूर्यके स्थित होनेपर वैशाखमासमें प्रातः स्नान करूँगा, आप इसे निर्विघ्न पूर्ण कीजिये।'

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

वैशाखे मेषगे भानौ प्रातःस्नानपरायणः।
अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन॥

वैशाखमासके माहात्म्यके सन्दर्भमें स्कन्दपुराणमें राजा कीर्तिमान्‌की कथा आती है—इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न महाराज कीर्तिमान् राजा नृगके पुत्र थे। वे चक्रवर्ती सम्राट् थे। महर्षि वसिष्ठकी प्रेरणासे उन्होंने अपने सम्पूर्ण राज्यमें वैशाखमासके धर्मका पालन करना अनिवार्य कर दिया। इसके कारण सभी मनुष्य वैशाखमासके देवता भगवान् विष्णुकी कृपासे विष्णुलोकको जाने लगे और यमलोक सूना हो गया। राजा कीर्तिमान्‌ने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके राज्यमें सम्पूर्ण प्रजा वैशाखमासके धर्मोंका पालनकर विष्णुलोकको जाती रही और अन्तमें राजा कीर्तिमान्‌को सायुज्य मुक्तिकी प्राप्ति हुई।

स्कन्दपुराणमें ही वैशाखमास-माहात्म्यके सन्दर्भमें एक अन्य राजा पुरुयशाकी कथा आती है। वे राजा अपने पूर्वजन्ममें एक क्रूरकर्मा व्याध थे। उन्होंने वैशाखमासकी गरमीमें एक ऋषिको दूरसे एक तालाब दिखा दिया और हवाके लिये पलाशका एक सूखा पत्ता दे दिया, इस पुण्यकर्मके प्रभावसे उनका जन्म राजवंशमें हुआ, परंतु पूर्वप्रारब्धके अनुसार उन्हें शत्रुओंसे पराजय और दारिद्र्यका कष्ट सहन करना पड़ा। अपने गुरु याज और उपयाजके कहनेपर उन्होंने वैशाखमासके धर्मोंका पालन किया। इससे उन्हें पुनः राज्यकी प्राप्ति हुई और भगवान् विष्णुकी कृपासे सायुज्य मुक्तिकी प्राप्ति हुई।

बोध-कथा—

जीवन-लक्ष्य

सुभाषचन्द्रबोसने लन्दन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयसे सन् १९२० ई०में आई०सी०एस० परीक्षा उत्तीर्ण की। ब्रिटिश सरकारने उन्हें सिविल सेवाके लिये चुन लिया, किंतु इस महत्त्वपूर्ण पदको सुभाषने ठुकरा दिया। उन्होंने भारतके तत्कालीन ब्रिटिश राज्य सचिव एडविन सैमुअल मोंटेग्यूको २२ अप्रैल १९२१ को अपने इस्तीफेका पत्र लिखा—'मैंने अपने हृदय तथा आत्माकी सम्पूर्ण निष्ठाके साथ देश-सेवा करनेका संकल्प लिया है। अतः मुझसे ब्रिटिश सरकारके अधीन अफसरशाहीका निर्वाह नहीं हो सकेगा। मेरे विचारसे जो व्यक्ति देशसेवाका संकल्प रखता हो, वह विदेशी सत्ताके प्रति वफादार नहीं रह सकता। अतः मैं ब्रिटिश सरकारके अधीन कार्य नहीं कर सकता।'

जब सुभाषके पिता जानकीनाथ बोसने उनसे आग्रह किया कि वे भारतीयोंके लिये दुर्लभ इस महत्त्वपूर्ण पदका त्याग न करें, तो उत्तरमें सुभाषने कहा—'पिताजी! यदि मेरे जीवनका लक्ष्य आई०सी०एस० अधिकारी बनना होता, तो मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य थी, किंतु मेरे जीवनका लक्ष्य भारतको आजाद कराना है। मुझे जिनसे लड़ना है, मैं उनके अधीन कार्य कैसे कर सकता हूँ? आई०सी०एस० अधिकारी रहकर मैं नैतिकता तथा स्वतन्त्रताके साथ अपनी आत्मा तथा अपने देशके प्रति न्याय न कर सकूँगा। सम्पन्न पिताके प्रतिभावान् पुत्रके लिये आई०सी०एस० अधिकारी बनना कोई बड़े गौरवकी बात नहीं है, किंतु इसी सम्पन्नता तथा प्रतिभाका प्रयोग यदि देशको आजाद करानेके लिये किया जाता है तो वह गौरवकी बात होगी।' पिताजीसे ऐसा कहकर सुभाष स्वतन्त्रता-संग्राममें कूद पड़े।

देवी-कवचका वैशिष्ट्य

(ब्रह्मर्षि श्रीश्रीसत्यदेवजी)

कवचका अर्थ है—'अंगत्राण'। जिसे पहनकर योद्धा शत्रुओंद्वारा छोड़े गये शस्त्रोंसे अपने शरीरकी रक्षा करते हैं, उसे कवच कहते हैं। साधन-समरमें प्रवेश करनेके लिये इस कवचको पहनकर अग्रसर होना पड़ता है; नहीं तो विजय-प्राप्तिकी कोई आशा नहीं रहती। इसलिये कहा गया है—'**जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा। निर्विघ्नेन भवेत् सिद्धिश्चण्डी-जपसमुद्भवा॥**' सप्तशतीका पाठ करनेसे पहले इस देवी-कवचका पाठ करना चाहिये। जो इस कवचका पाठ करते हैं, वे बिना किसी बाधाके चण्डीपाठके फलस्वरूप सफलता और सिद्धिको पानेमें समर्थ होते हैं।

इस कवचमें शरीरके विभिन्न अंग-प्रत्यंगोंका उल्लेख है एवं उन सभी अंगोंकी रक्षाके लिये माँके विभिन्न नामोंका स्मरणकर उनकी प्रार्थना करनेका विधान है। जैसे—'**प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री**', इन्द्रशक्तिरूपिणी माँ पूर्वकी ओरसे मेरी रक्षा करें या '**शिखां मे द्योतिनी रक्षेत्**' प्रकाशशक्तिस्वरूपा माँ मेरी शिखाकी रक्षा करें। इसमें शरीरके जिन-जिन अंगोंका उल्लेख है, मनको शरीरके उन-उन स्थानोंपर ले जाना चाहिये। उस स्थानपर मनको केन्द्रीभूत करनेपर एक विशेष ज्ञानकी अनुभूति होगी; कल्पनामें नहीं वास्तवमें होगी। उस अनुभूतिको ध्यानमें रखकर माँके विभिन्न नामोंका स्मरण और प्रार्थना करनी चाहिये। कवचमें जिस स्थानपर माँके जिस नामके उच्चारणका विधान है, उस नामसे माँकी जो शक्ति प्रकाशित होती है, उस शक्तिको अनुभव करनेका प्रयास करना चाहिये। इन नामोंका उच्चारण करते समय किसी विशेष मूर्तिका ध्यान करनेकी आवश्यकता नहीं है, केवल उस शक्तिका बोध होना ही यथेष्ट है। जैसे—'खड्गधारिणी'; इसमें खड्गधारिणी मूर्तिका चिन्तन न करके हाथोंमें खड्गादि अस्त्र धारण करनेकी जो शक्ति है, केवल उस शक्तिका चिन्तन करना चाहिये।

जो सत्यप्रतिष्ठा कर पाते हैं अथवा गुरुके द्वारा बताये गये किसी विशेष उपायद्वारा मनको एकाग्र करनेमें अभ्यस्त हो गये हैं, उनके लिये इस शक्तिको समझना या अनुभव करना बहुत सहज है। फिर भी कोई भी व्यक्ति थोड़ेसे प्रयाससे ही इस कवचद्वारा सिद्धि प्राप्त कर सकता है। अपने शरीरके विभिन्न अंग-प्रत्यंगोंमें अपने मनको ले जाकर एवं उस जगह मातृशक्तिका अनुभव करनेसे ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं। कोई यह मत सोचना कि इस कवचके अन्तमें जिस फलका वर्णन किया गया है, वह केवल स्तुतिवाक्य है, इसका एक-एक अक्षर सत्य है। सारे फल मिलें या न मिलें, पर '**नश्यन्ति व्याधयः सर्वे**' शारीरिक कष्ट तो अवश्य दूर हो जायँगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है—यह परीक्षा करके देख सकते हो। मात्र शारीरिक स्वास्थ्य-लाभ ही नहीं, मानसिक बल और आध्यात्मिक गतिकी उत्कृष्टता भी प्राप्त होती है। रामकवच, सूर्यकवच, श्रीकृष्णकवच, कालीकवच इत्यादि विभिन्न देवी-देवताओंके कवचमें, जिस-किसी भी कवचका नियमपूर्वक पाठ करनेसे फलकी प्राप्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, पर देवी-कवचमें जितने अंग-प्रत्यंगोंका उल्लेख है, अन्य किसी कवचमें उतना नहीं है। जो भी हो, जो व्यक्ति चण्डीपाठके फल जैसे—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षके अभिलाषी हैं, उनके लिये कवचका पाठ करना नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसका पाठ करनेसे निर्विघ्न साधन-समरमें विजयी हुआ जा सकता है, पर पाठको नियमपूर्वक करना होगा, नहीं तो आशानुरूप फलकी प्राप्ति नहीं होगी।

देवीसूक्त, अर्गला, कीलक एवं देवी-कवच—ये सभी साधन-समर या चण्डीतत्त्वमें प्रवेशके पूर्वके आयोजन हैं। यह प्रयास जिसका जितना सुन्दर होगा, उसकी सिद्धि-प्राप्ति और आध्यात्मिक उन्नति उतनी ही सुन्दर होगी। अगर हमारी यह चेष्टा पूरी तरहसे ठीक नहीं होगी, तो फिर क्या हम चण्डीतत्त्वमें प्रवेश नहीं कर पायेंगे? नहीं—ऐसा नहीं है, बार-बार अभ्यास करते-करते या बार-बार चण्डीपाठ करनेसे एक-न-एक दिन हम देखेंगे कि ये जो पूर्व आयोजन हैं, ये किसी अज्ञात शक्तिके प्रभावसे अपने-आप सुसम्पन्न हो गये हैं, तभी हम चण्डीके प्रकृत रहस्यसे अवगत होकर मातृकृपाको पाकर धन्य हो जायँगे।

श्रीरामचरितमानसमें वसन्त-वर्णन

(श्रीउमेशप्रसादसिंहजी)

गोस्वामी तुलसीदासजीद्वारा रचित श्रीरामचरितमानस प्रत्येक हिन्दूके जीवनसे जुड़ा ग्रन्थ है। उन्होंने हमारे धर्म-संस्कृतिसे जुड़े हर विषयको तो छुआ है ही, समाज-व्यवस्था, पारिवारिक जीवन, राजधर्मके साथ-साथ कृषि और ऋतुओंका भी श्रीरामचरितमानसमें विशद वर्णन किया है। आनन्द, उमंगसे भरे ऋतुराज वसन्तकी चर्चा उन्होंने बहुत विस्तारसे की है।

रामचरितमानसकी रचनाका शुभारम्भ भी वसन्त-ऋतुमें ही हुआ था। गोस्वामीजीने लिखा है—

संबत सोरह सै एकतीसा । करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
नौमी भौम बार मधुमासा । अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥

वसन्त-कालको मधुमास भी कहते हैं। वसन्तकी उत्पत्ति **'वसत्यस्मिन् सुखम्'** से की गयी है। अर्थात् जिस ऋतुमें प्राणियोंको ही नहीं, वृक्ष-लता आदिको भी प्रसन्न करनेवाला मधुरस प्रकृतिद्वारा प्राप्त होता है, उसीको वसन्त कहते हैं। गीतामें श्रीकृष्णने **'ऋतूनां कुसुमाकरः'** कहकर वसन्तको गौरव प्रदान किया है।

महाकवि कालिदास वसन्तके बड़े प्रवक्ता थे। उन्होंने ऋतुसंहारमें लिखा—

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः
सर्वं प्रियं चारुतरं वसन्ते॥

आगे प्रसंग श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डका है। शिवजीकी अखण्ड समाधिको भंग करनेके लिये कामदेव जाते हैं। लेकिन जब वे अपने अभियानमें सफल नहीं होते, तो वहाँ वसन्तका गुण-धर्म फैलाते हैं। चारों तरफ वसन्तका विस्तार होता है। अशोककी वाटिकाओंमें कामोद्दीपन करनेवाला वातावरण बन जाता है तथा सुगन्धित पुष्प विराजने लगते हैं। भौंरोंसे घिरे हुए कुमुदके पुष्प विशेष रूपसे कामावेशको बढ़ानेवाले हो गये। उस समय कोयलोंका कलरव उद्दीप्त करनेवाला सुरम्य, मनोहर और अतिप्रिय हो गया। भौंरोंका मनोहारी गुंजन मनको मोहने लगा। चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना चारों ओर फैल गयी। गोस्वामीजी लिखते हैं—

प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा । कुसुमित नव तरु राजि बिराजा॥
बन उपबन बापिका तड़ागा । परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा । देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा॥
जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

(रा०च०मा० १।८६।६—८, छन्द)

वसन्तके व्यापक स्वरूपको देखकर महाकविने लिखा—

धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।

तुलसीदासजी वसन्त-वर्णनमें इतना खो गये कि आगे बढ़नेका रास्ता ही भूल गये। आधा सोरठा लिख लेनेके बाद उन्हें चिन्ता हुई 'कामदेवने जब सबके मनको हर लिया, तो उसमें तो श्रीनारदादि देवर्षि और विरक्त भक्त भी आ गये, जिन्हें काम-विकार स्पर्श भी नहीं कर सकता।' हम जानते हैं कि श्रीरामचरितमानस प्रासादिक वाणी है। इस सोरठाकी दूसरी पंक्ति लिखनेमें गोस्वामीजी जब अटक गये तो उन्होंने हनुमान्‌जीका स्मरण किया। हनुमान्‌जी प्रकट हुए। सोरठाकी दूसरी पंक्तिकी पूर्ति कर दी, लिख दिया—

जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ॥

दूसरा प्रसंग बालकाण्डमें भगवान् रामसहित चारों भाइयोंके जन्मकालका है। उस समय अयोध्यामें वसन्तका साम्राज्य छा गया है। चैत्रमास शुक्लपक्ष नवमी तिथिको वसन्त अपने पूरे उत्कर्षपर था। धरती पुष्पोंकी खुशबूसे गमक रही थी। सरयू नदीमें मीठा जल प्रवाहित हो रहा था। अयोध्याके राजमहलपर देवगण फूलोंकी वर्षा कर रहे थे। भगवान् रामसहित चारों भाइयोंका जन्म हुआ। सुहागिनोंने मंगल-गीत गाये। शंख, नगाड़े और वाद्य बजने लगे। देवताओंने जयकार किया और अपने भवन लौट गये।

तुलसीदासजीने लिखा है—

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ॥
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्त्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा॥

अब एक और प्रसंग देखें। यह प्रसंग जनकपुरका है। सीता-स्वयंवरमें भाग लेनेके लिये विश्वामित्रमुनिके साथ राम-लक्ष्मण पधार चुके हैं। मुनिजीके आदेशसे वे राजकीय बागमें गये। वहाँ वसन्तका साम्राज्य छाया हुआ था। बागके पेड़-पौधे और लताएँ वसन्तसे आह्लादित हो रही हैं। गोस्वामीजीने लिखा है—

भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर रूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥

इन चन्द चौपाइयोंमें महाकवि तुलसीदासजीने वसन्तका सम्पूर्ण स्वरूप प्रस्तुत कर दिया है। बागमें पुष्प और लताएँ लगी हुई हैं। तरह-तरहके फल लगे हैं। पक्षी कलरव कर रहे हैं। मध्यमें सरोवर है। उसपर सीढ़ियाँ बनी हैं। अनेक जलपक्षी वहाँ गुंजन कर रहे हैं।

अरण्यकाण्डमें प्रभु श्रीराम अनुज लक्ष्मणसे वनकी शोभाका वर्णन करते हुए कहते हैं—

देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥

यहाँ गोस्वामीजीने वसन्त-ऋतुका वर्णन किसी राजाके सैन्य-शिविरके रूपमें किया है—

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥
तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभीं झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥
(रा०च०मा० ३।३८।१—८)

इसके बाद रामजीके विवाहका प्रसंग आता है, जिसे गोस्वामीजीने मंगलमय ऋतुराज वसन्त कहा है—

बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू॥

प्रसंग सुन्दरकाण्डका है। यहाँ हम देखते हैं कि जहाँ सत्य, न्याय और धर्म है, वहीं वसन्त आता है। उस समय लंकाका 'अशोक वाटिका' उपवन बहुत प्रसिद्ध था। बहुत करीनेसे उसे सजाकर रखा गया था। लेकिन उसमें कभी वसन्त नहीं आया। उलटे उसे उजाड़ने और जलानेका ही कार्य हुआ; क्योंकि वहाँ रावणका अत्याचार था।

वसन्त तो वहाँ रहता है, जहाँ सन्त रहते हैं; जहाँ निशाचर रहेंगे वहाँ तो सदा ग्रीष्म ऋतु ही रहेगी। लंकामें सन्त तो एकमात्र विभीषण हैं, वहाँ 'नव तुलसिका वृन्द' दिखायी देता है।

उत्तरकाण्डमें गोस्वामी तुलसीदासजीने वसन्त-ऋतुका बड़े ही समारोहपूर्वक चित्रण किया है। रामराजमें अयोध्याके निवासी वर्षभर वसन्तका आनन्द लेते थे।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबहिं परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

अयोध्यामें वृक्ष मीठे फलों और सुगन्धित पुष्पोंसे आच्छादित रहते हैं। नगरवासियोंने अपने निवासके पास पौधे लगाये हैं, जिनमें अनेक प्रकारके पक्षी प्रेमके साथ रहते हैं। फूलोंके बगीचेमें बहुतायत पौधे सुन्दरता बढ़ा रहे हैं। सबके मनको मोह रहे हैं।

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत की नाईं॥

सरयूनदीके किनारे विविध घाटोंपर लोग स्नान करते हैं। किनारोंपर देवताओंके मन्दिर बने हैं। आस-पास उपवन हैं, जिनमें तुलसीके पौधोंकी बहुलता है।

जहाँ भगवान् रामका निवास है, वहाँ प्रकृतिके सभी तत्त्व मिलकर वसन्तका निर्माण करते हैं। सरयूमें शुद्ध मीठा जल प्रवाहित होता है। मन्दिरों और सन्तोंके आश्रममें रामधुन चलती रहती है। जहाँ ऐसे पुण्यके कार्य होते हैं, वहाँ तो त्रिविध तापोंसे रहित सदा वसन्त ही रहता है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

धर्मसेतुपालक—श्रीराम

(श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)

गोस्वामी तुलसीदासजीको सेतुका प्रतीक बहुत भाता है। वे कहते हैं कि भगवान् श्रीरामका नाम सेतु है।

नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भवसागर तरहिं॥

भगवान्‌की सुन्दरताका वर्णन भी उन्होंने सेतुके रूपमें किया। जब समुद्रमें जलचरोंद्वारा सेतु बन जाता है, तो वहाँ भगवान्‌के सौन्दर्यके द्वारा ही इस सेतुका निर्माण होता है। श्रीरामका नाम सेतु है, रूप भी सेतु है और चरित भी सेतु है।

सूर्यकुलके ध्वजारूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मनुष्योंके सदृश ऐसे चरित्र करते हैं, जो संसारके पार उतरनेके लिये सेतुके समान हैं।

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥

सेतुका वास्तविक तात्पर्य यह है कि साधनाका ऐसा रूप होना चाहिये, जिसमें बड़े-से-बड़े व्यक्तिसे लेकर छोटे-से-छोटे व्यक्ति भी उसी सत्यका साक्षात्कार कर सकें। भगवान् रामने केवल समुद्रपर ही सेतुका निर्माण नहीं किया, बल्कि उन्होंने अपने चरित्रके द्वारा असंख्य सेतुओंका निर्माण किया है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसकी रचनामें कहा कि जो अत्यन्त बड़ी और श्रेष्ठ नदियाँ हैं, यदि उनपर राजा पुल बँधा देता है, तो अत्यन्त छोटी चींटियाँ भी उनपर चढ़कर बिना ही परिश्रमके पार चली जाती हैं। इसी प्रकार मुनियोंके वर्णनके सहारे मैं भी श्रीरामके चरित्रका वर्णन सहज ही कर सकूँगा।

अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारिहिं जाहिं॥

इस सेतुनिर्माणकी प्रक्रियाके कई तात्पर्य हैं। उनमेंसे एक तात्पर्य है—दो किनारोंको जोड़ना। नदीके दोनों किनारोंको सेतुके द्वारा जोड़कर एक-दूसरेसे मिलाया जा सकता है। आज जो समस्या नदीके दो किनारोंकी है, वही समाजकी है। धर्म, राजनीति और व्यवहारके सम्बन्धमें इसी प्रकारकी दूरी दिखायी देती है। इस दूरीको देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि यदि हम एकको स्वीकार करेंगे तो दूसरेको छोड़ना पड़ेगा। लेकिन भगवान् श्रीरामने अपने चरित्रके द्वारा एक ऐसा अनुकूल हल प्रस्तुत किया कि अलग-अलग विचारधाराओंमें भी व्यवहारमें यह जो इतना अन्तर है, उसे मिटाया जा सकता है।

यद्यपि धर्मका मुख्य उद्देश्य समाजके प्रत्येक वर्ग और व्यक्तिको एक-दूसरेके निकट लाना है, किंतु प्रायः धर्मके इस उद्देश्यकी पूर्तिमें सफलता नहीं मिलती। कारण यह है कि स्वार्थी लोग धर्मकी व्याख्या भी अपने स्वार्थोंके अनुसार करनेका प्रयत्न करते हैं। समाजमें दूरी चाहे वर्गगत हो या आर्थिक अथवा आध्यात्मिक, प्रत्येक वर्गका पक्षपात अपने ही वर्गके प्रति होता है।

ऐसी स्थितिमें श्रीरामका अवतार एक ऐसे सेतुके रूपमें होता है, जो परस्पर विरोधी शक्तियोंको एक-दूसरेके निकट ले आता है। महर्षि विश्वामित्र और गुरु वसिष्ठका संघर्ष इतिहासकी एक महत्त्वपूर्ण कथा थी, जहाँ दोनों हस्तियोंमें एक-दूसरेके प्रति घोर विरोध था। श्रीरामचन्द्रजीने दोनोंमें गुरुत्वका सूत्र स्थापितकर दोनोंको एक-जैसे सम्मानका पद प्रदान किया।

भगवान् राम जनकपुरके नर-नारियोंके प्रेमवश उनको दर्शन देकर सुख देना चाहते हैं। महर्षि विश्वामित्रके साथ जा नहीं सकते। इसलिये लक्ष्मणजीके हृदयमें विशेष लालसा प्रकटकर उनके साथ जाना चाहते हैं। धर्म-मर्यादाका रक्षक ही नम्रता दिखा सकता है। श्रीराम महर्षि विश्वामित्रके चरणोंमें नमन करते हैं और लक्ष्मणके अन्तःकरणकी लालसाको संकोच छोड़कर प्रकट कर देते हैं कि लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं। विश्वामित्रजीकी आज्ञा पाकर वे लक्ष्मणको लेकर जनकपुर जाते हैं। इस प्रकार आदर और अपनेपनकी खाईमें श्रीरामका व्यक्तित्व सेतुके समान एक-दूसरेको मिलानेवाला है। महर्षि विश्वामित्र भी श्रीरामके शील और व्यक्तित्वकी उदारतासे रीझकर उनकी सराहना करते हुए कहते हैं—'हे राम! तुम धर्मकी मर्यादाका पालन करनेवाले हो और प्रेमके वशीभूत होकर सेवकोंको सुख देनेवाले हो।'

धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥

चित्रकूटमें भरत आदिसे मिलनेके पश्चात् श्रीराम महाराज दशरथके क्रियाकर्मसे शुद्ध होनेके दो दिन पश्चात् गुरु वसिष्ठसे कहते हैं कि अवधसे आये सभी लोग कन्दमूल-फलका आहार करके दुःख पा रहे हैं और अवध राजधानी भी सूनी पड़ी है। अतः आप सबके साथ अवधपुरीको लौट जायँ। अतः भगवान् श्रीराम अवधवासियोंके दुःख-सुखके लिये सेतुका कार्य करते हैं। तब गुरु वसिष्ठ भी कह उठते हैं—हे राम! तुम धर्मके सेतु और दयाके धाम हो, तुम भला ऐसा क्यों न कहो?

धर्म सेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुँ बिश्राम॥

चित्रकूटके दरबारमें गुरु वसिष्ठकी समस्या यह है कि यदि श्रीराम वनमें रह जाते हैं, तो सत्य और धर्मकी रक्षा होती है, पर भरतका प्रेम तिरस्कृत होता है। और यदि भरतके प्रेमवश भगवान् अयोध्या लौट जाते हैं, तो धर्मकी हानि होती है। तब गुरु वसिष्ठने श्रीरामजीको सेतु बनानेका बड़ा कठिन काम सौंप दिया। वे आदेश देते हैं कि लोकमत, साधुमत, राजनीति और वेदकी दृष्टिसे जो ठीक हो, वह कीजिये।

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥

साधुमत न बदलनेवाला, अपने सिद्धान्तपर दृढ़ रहनेवाला होता है और लोकमत देशकाल और परिस्थितियोंके साथ परिवर्तनशील है। साधुमत परहितका समर्थन करता है तो लोकमतको अपने हितकी चिन्ता होती है। वेदका दृष्टिकोण परमार्थ सत्यका उद्‌घाटन करना है और राजनीतिको एकमात्र लोककी चिन्ता रहती है, वह भी तत्कालिक लाभपर दृष्टि रहती है। वेदकी दृष्टि सार्वकालिक है। इस तरह गुरु वसिष्ठजीने चार दृष्टियोंपर विचार करनेका आदेश दिया, जो परस्पर विरोधी हैं। जब गुरु वसिष्ठजीने श्रीरामजीको इनका सामंजस्य करनेको कहा तो श्रीरामजीने भरतसे कहा कि भरत, तुम्हारे सहयोगके बिना मैं अकेले इस सेतुका निर्माण नहीं कर सकता। भरतजीके विशाल व्यक्तित्वमें साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदमतका एकाकार देखकर भगवान् रामने इसी विश्वासपर निर्णय दे दिया कि भरतजी जो कहें, वही करनेमें सबकी भलाई है। श्रीरामजी स्वयं तो सेतु बनाते ही हैं, परंतु साथ ही दूसरोंसे भी बनवाते हैं।

श्रीरामचन्द्रजीको *'धरम सेतु पालक'* कहना उनके जीवन तथा अवतार-कार्यका सम्पूर्ण रहस्य यथार्थके साथ प्रकट करता है।

विभीषणको शरणमें लेनेका सुग्रीवने विरोध किया और कहा—हे प्रभो! राक्षसोंकी माया बड़ी विचित्र होती है। सम्भव है कि यह दुष्ट मायावी बनकर हमारा भेद लेने आया हो। अतः इसे बन्दी बनाकर रख लीजिये। परंतु नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थको श्रीरामसे बढ़कर कोई नहीं जानता।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥

प्रभु श्रीरामने नीति और प्रीतिके बीच सेतु बना दिया। वे सुग्रीवसे कहते हैं—राजनीतिकी दृष्टिसे तुमने बहुत अच्छी बात कही। लेकिन फिर अपनी बात कह देते हैं कि मेरा तो प्रण है कि संकटमें आये शरणागतकी रक्षा करूँ।

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥

वे कहते हैं कि जगत्‌में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण उन सबको एक निमेषमें मार सकते हैं और यदि विभीषण भयभीत होकर मेरी शरणमें आया है तो मैं उसे प्राणोंकी तरह रखूँगा। प्रभुने नीति और प्रीतिके सामंजस्यके रूपमें ऐसा सेतु बनाया कि सुग्रीवके मनमें प्रसन्नता रहती है कि उसके मतको तिरस्कार या उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखकर सम्मान दिया गया और होता वही है, जो प्रभु चाहते हैं।

लोककल्याणके लिये अवतार लेकर प्रभु श्रीरामने अपने लीला-कालमें अपने प्रत्यक्ष आचरण और उपदेशोंद्वारा बड़े यत्नके साथ धर्म-सेतु बाँधा। उन्होंने स्पष्ट कहा—'हे भविष्यमें होनेवाले राजाओ! यह रामचन्द्र आप लोगोंसे विनम्रतापूर्वक बारम्बार प्रणामकर याचना करता है कि आप लोग मेरे द्वारा बाँधे हुए धर्मसेतुकी सुरक्षा सदा करते रहें।

भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला
नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां
काले काले पालनीयो भवद्भिः॥
(स्कन्दपुराण, ब्राह्म० धर्मा० ३४।४०)

इसलिये प्रत्येक देशवासीपर इस धर्मसेतुकी रक्षाका दायित्व है। इसीमें सब प्रकारका कल्याण है।

देहाध्यास कैसे छूटे ?

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

एक अच्छे सन्तने एक दिन सहज पूछ लिया कि 'देहाध्यास कैसे छूटे ?' तो मैं परिहासमें बोला—'पैरमें रस्सी बाँधकर उलटे बिजलीके पंखेमें लटकना चाहिये।'

वे हँस दिये। बात हँसनेकी ही है। देहाध्यास क्या है ? इसे समझे बिना आजकल लोग देहकी सुध न रहे, इसे देहाध्यास छूटना समझ लेते हैं और तब गलेमें रस्सी बाँधकर लटकने, गोली मार लेने, विष खा लेनेके अतिरिक्त उन्हें क्या उपाय बतलाया जाय। निद्रामें ऐसे देहाध्यास प्रतिदिन छूटता है। उससे जिसे सन्तोष नहीं है, उसे क्लोरोफार्म सूँघकर तो सन्तोष होना नहीं है।

शरीरकी सुध न रहनेका नाम देहाध्यास छूटना हो तो पत्थर, लोहे आदिका छूटा हुआ ही है। आप वैसा बनना चाहते हैं, इसका अर्थ है कि ईश्वरने आपको मनुष्य बनाकर भूल की।

देहाध्यास क्या है ? अवश्य यह प्रश्न पहले किया जाना चाहिये और तब देहाध्यास छूटनेकी चिन्तामें पड़ना चाहिये। देहकी प्रतीति और देहसे व्यवहार करनेका नाम देहाध्यास हो तो वह जीवनमें जागृति रहते नहीं छूटनेवाला है। वह तो निद्रित, मूर्च्छित या मृतका ही छूटता है।

'मैं देह हूँ' ऐसी मान्यता केवल जड़वादियोंकी होती है, जो देहसे भिन्न आत्मा नहीं मानते। जो पाप-पुण्यकी, परलोककी चिन्ता करता है, वह अपनेको देह नहीं मानता। लेकिन देहाध्यास केवल परलोक अर्थात् देहान्तके पश्चात् भी अपनी सत्ता माननेमात्रसे छूटता नहीं। अत: मैं देह नहीं हूँ, इतना जानने-माननेका नाम देहाध्यासकी निवृत्ति नहीं है। देहमें और देहके नाममें आसक्तिका नाम देहाध्यास है। 'मैं देह हूँ' इस प्रकारकी भ्रान्तिका नाम तो अभिनिवेश है। आस्तिक पुरुष यदि सच्चा आस्तिक है, तो उसमें अभिनिवेश नहीं होता। धर्माचरणसे, धर्ममें दृढ़ आस्था होनेसे परलोकपर विश्वास होनेसे अभिनिवेश मिट जाता है। किंतु देह और नामकी आसक्ति तब भी बनी रहती है। जैसे घर, दुकान, मोटर, धन, वस्त्रादिको कोई मैं नहीं मानता, किंतु उसमें आसक्ति रहती है और खूब दृढ़ रहती है।

अध्यास मिटनेका अर्थ है, परिच्छिन्नत्वका भ्रम मिटना। देहाध्यास-निवृत्ति शब्द अधिक सुगम-सुबोध है। यह देह और नामकी आसक्ति कैसे मिटे—यही साधकको मुख्यरूपसे देखना है।

यह देहासक्ति कैसे मिटे ? इसका उत्तर इतना ही है कि ज्ञान, भक्ति, योगादि साधन इसीलिये हैं। किसी साधनाकी पूर्णता प्राप्त किये बिना यह मिट नहीं सकती, अत: पूरी निष्ठासे सम्पूर्ण लगनसे अपने साधनमें लगे रहना चाहिये।

सतत स्मरण कैसे हो ? एक सज्जन कहते हैं कि मेरे मुखसे अखण्ड सीताराम नाम निकलता रहे, ऐसा उपाय कर दीजिये।

मैंने उन्हें उत्तर दिया—जो अखण्ड जप, अखण्ड स्मरण महाराज दशरथमें, माता कौसल्यामें, श्रीभरत लालमें, श्रीहनुमान्‌जीमें, श्रीराधामें नहीं था, वह आपमें हो जाय, ऐसा कोई उपाय मुझे पता नहीं है।

अव्यावृतभजनात्—श्रीनारदभक्तिसूत्रकी बात है। मन्त्र भी कहते, लिखते हैं कि सतत जप-चिन्तन होना चाहिये।

इस अव्यावृत, सतत, निरन्तर, अखण्डका अर्थ क्या है ? जैसे सामान्य अर्थ इनका प्रचलित है, यदि वही अर्थ है तो यह एक असम्भव बात है और ऐसी अवस्था किसीको प्राप्त नहीं थी। ऊपर जो मैंने बहुत बड़ोंके नाम लिये हैं, इसीलिये लिये हैं।

नियम यह है कि मनमें एक कालमें एक ही वृत्ति रहती है, किसीको क्षणभर भी निद्रा न आये, यह हो सकता है, किंतु वह स्वस्थ व्यक्ति नहीं होगा। जिसे भूख-प्यास लगती है, जिसे दूसरेसे कुछ भी कहना है, जिसे संसारकी कोई बात क्षणभरको भी स्मरण आती है, उस कालमें तो स्मरण, भजन टूटता ही है।

अब आप देखें कि बड़े-से-बड़े भक्त या महापुरुष अथवा भगवान्‌के अन्तरंग परिकर सोते, खाते-पीते और दूसरी भी कोई चर्चा-स्मृति करते हैं या नहीं ? उन्हें

अपने माता-पिता, पति, सेवक, सखा या सामानकी कभी याद आती है? ज्ञान तथा योगके ग्रन्थोंमें एक सप्तम भूमिकाका वर्णन है। उसमें शरीर और संसारका क्षणभरको भी स्मरण नहीं होता, किंतु ऐसी अवस्था प्राप्त होनेपर शरीर इक्कीस दिनमें नष्ट हो जाता है। दूसरे इस अवस्थामें मन निष्क्रिय होता है। स्मरण-भजनकी क्रिया नहीं होती वहाँ।

सतत स्मरण शास्त्र एवं सन्तोंकी वाणीमें आया है, इसका निर्देश तो व्यर्थ नहीं है। इसको सम्भव होना चाहिये। यह सम्भव है, व्यवहारिक है किंतु इन शब्दोंका अर्थ ठीक समझा नहीं गया। जहाँतक क्रियाका प्रश्न है, कोई क्रिया सतत नहीं हो सकती। वह निद्रामें, भोजनादिके समय, दूसरे आवश्यक कामोंमें छूटेगी ही, यह बात शारीरिक एवं मानसिक दोनों क्रियाओंके सम्बन्धमें है। केवल भावमें सातत्य नैरन्तरीयता अखण्डता चल सकती है।

आपको अपने नामका सतत निरन्तर स्मरण रहता है। आप कभी अपना नाम रटते नहीं, मनसे उसे प्रायः भूले रहते हैं, किंतु निद्रामें भी वह स्मरण रहता है। कोई आपका नाम लेकर नींदमें आपको पुकारे तो भी आप जाग जाते हैं। यही सतत स्मरण है। रात-दिन अपने नामको भूले रहना, भूले रहना नहीं है। माताको अपना इकलौता पुत्र, प्रेयसीको प्रियतम सतत स्मरण रहता है। यह बात समझानेमें कठिनाई हो सकती है, पर अपने नामकी बात आप समझ सकते हैं। भगवन्नाम और भगवान्‌की स्मृति अपने नामके समान सहज जीवनका अंग बन जाय, यही सतत स्मरण है। यही अवस्था पानेका यत्न करना है। मन क्रियात्मकरूपसे कोई स्मरण बनाये तो रख सकता नहीं। [प्रेषक—श्रीजनार्दनजी पाण्डेय]

बोध-कथा

'सब धन धूरि समान'

विजयनगरके राजा कृष्णदेवरायने जब राजगुरु व्यासरायके मुखसे सन्त पुरन्दरदासके सादगीभरे जीवन और निर्लोभिताकी प्रशंसा सुनी, तो उन्होंने संतकी परीक्षा लेनेकी ठानी और एक दिन सेवकोंसे संतको बुलवाकर उनको भिक्षामें चावल दिये। संत प्रसन्न हो बोले—महाराज! प्रतिदिन मुझे इसी तरह कृतार्थ किया करें।

घर लौटकर पुरन्दरदासने प्रतिदिनकी भाँति भिक्षाकी झोली पत्नी सरस्वती देवीके हाथमें दे दी, किंतु जब वह चावल बीनने बैठी तो देखा कि उसमें छोटे-छोटे हीरे हैं। उन्होंने तत्क्षण पतिसे पूछा—कहाँसे लाये हैं आज भिक्षा? पतिने जब 'राजमहलसे' जवाब दिया तो सन्त-पत्नीने घरके पास घूरेमें वे हीरे फेंक दिये।

अगले दिन जब पुरन्दरदास भिक्षा लेने राजमहल गये तो सम्राट्‌को उनके मुखपर हीरोंकी आभा दिखी और उन्होंने फिरसे झोलीमें चावलके साथ हीरे डाल दिये। ऐसा क्रम एक सप्ताहतक चलता रहा।

सप्ताहके अन्तमें राजाने व्यासरायसे कहा—महाराज! आप कहते थे कि पुरन्दर-जैसा वैरागी दूसरा नहीं है, मगर मुझे तो वे लोभी जान पड़े। यदि विश्वास न हो तो उनके घर चलिये और सच्चाईको अपनी आँखसे देख लीजिये।

वे दोनों जब संतकी कुटियामें पहुँचे तो देखा कि लिपे-पुते आँगनमें तुलसीके पौधेके समीप सरस्वतीदेवी चावल बीन रही हैं। कृष्णदेवरायने कहा—बहन! चावल बीन रही हो?

सरस्वतीदेवीने कहा—हाँ भाई! क्या करूँ, कोई गृहस्थ भिक्षामें ये कंकड़ डाल देता है, इसलिये बीनना पड़ता है। ये कहते हैं, भिक्षा देनेवालेका मन न दुखे, इसलिये प्रसन्नमनसे भिक्षा ले लेता हूँ। वैसे इन कंकड़ोंको चुननेमें बड़ा समय लगता है।

राजाने कहा—बहन! तुम बड़ी भोली हो, ये कंकड़ नहीं, ये तो मूल्यवान् हीरे दिखायी दे रहे हैं। इसपर सरस्वतीदेवीने कहा—आपके लिये ये हीरे होंगे, हमारे लिये तो कंकड़ ही हैं। हमने जबतक धनके आधारपर जीवन व्यतीत किया, तबतक हमारी दृष्टिमें ये हीरे थे। पर जबसे भगवान् विठोबाका आधार लिया है और धनका आधार छोड़ दिया है, ये हीरे हमारे लिये कंकड़ ही हैं। और बीने हुए हीरोंको वह घूरेपर डाल आयी, जहाँ पिछले छः दिनके फेंके गये हीरे चमचमा रहे थे। यह देख व्यासरायके मुखपर मन्द मुसकान फैल गयी और सलज्ज कृष्णदेवराय माता सरस्वतीके चरणोंपर झुक गये। [श्रीशरद् चन्द्रजी पेंढारकर]

सीतारामका औपनिषदिक स्वरूप

(पद्मविभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

भगवती सीता तथा भगवान् रामके विमल जीवनका चित्रण कहाँ नहीं उपलब्ध होता। यह विश्वभरमें अपनी दिव्यता तथा मनोहरताके कारण नितान्त प्रख्यात है। पौराणिक साहित्यका तो यह सर्वस्व ही है। ऐसा कौन-सा पुराण होगा, जिसमें इन युगल सरकारके अभिराम रूपका चित्रण नहीं उपलब्ध होता।

उपनिषदोंमें भी इसका गम्भीर चिन्तन भक्तोंको अपनी ओर सदैव आकृष्ट करता है। उपनिषदोंमें अथर्ववेदीय रामतापनीयकी मुख्यता है। इसके दो रूप उपलब्ध हैं—पूर्वतापनीय तथा उत्तरतापनीय। इसीके आधारपर यहाँ सीतारामके चरित्रका प्रतिपादन किया जा रहा है।

रामोत्तरतापनीयकी दृष्टिमें प्रणव—ॐकारके छः भाग होते हैं और इन भागोंमें सीतारामके स्वरूपका क्रमशः चिन्तन तथा मनन किया गया है। उपनिषद्के मूल श्लोक इस प्रकार हैं—

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः॥
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥
श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदाधारकारिणी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥
सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिका।
प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥

(१) सुमित्रानन्दन लक्ष्मण प्रणवके 'अ'कारसे उत्पन्न हैं। ये जाग्रत्के अभिमानी 'विश्व' नामसे परिचित हैं। चतुर्व्यूहमें ये 'संकर्षण' रूपसे विराजमान हैं।

(२) 'उ' से उत्पन्न शत्रुघ्न स्वप्नके अभिमानी देवता 'तैजस' नामसे परिचित हैं। चतुर्व्यूहमें 'प्रद्युम्न' नामसे विराजमान हैं।

(३) 'म' से प्रादुर्भूत 'भरत' का सम्बन्ध है। ये सुषुप्तिके अभिमानी 'प्राज्ञ' नामसे परिचित हैं। चतुर्व्यूहमें 'अनिरुद्ध' नामसे इन्हींका निर्देश किया जाता है।

(४) प्रणवके चतुर्थ अंश अर्धमात्रारूप भगवान् राम ही हैं। ये ही तुरीय पुरुषोत्तम हैं। ब्रह्मानन्द ही इनका एकमात्र विग्रह है। चतुर्व्यूहोंमें ये वासुदेव नामसे प्रसिद्ध हैं।

(५) श्रीरामके सामीप्यमात्रसे जो सम्पूर्ण देहधारियोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हैं, ये जगदाधारिणी विदेहनन्दिनी सीता 'नादविन्दु' स्वरूपा हैं। ये ही मूल प्रकृतिके नामसे जानी जाती हैं। प्रणवसे अभिन्न होनेके कारण ब्रह्मवादी जन इन्हें 'प्रकृति' नामसे पुकारते हैं।

यद्यपि परमात्मा एक तथा अखण्ड है, तथापि उसके समग्र स्वरूपका बोध करानेके लिये उसमें चार अंशों या पादोंकी कल्पना की गयी है। जाग्रत् यानी स्थूल जगत्, स्वप्न अर्थात् सूक्ष्म जगत्, सुषुप्ति अर्थात् प्रलयावस्थामें लीन जगत् तथा इन सबसे विशुद्ध ब्रह्म—ये ही परमेश्वरके चार पाद अथवा अवयव हैं। रामतत्त्वके वर्णनमें 'रां' यह बीज ही प्रणव है तथा पुरुषोत्तम राम सम्पूर्ण परमेश्वर हैं। इनके चार पाद—लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत तथा कौसल्यानन्दन श्रीराम हैं। इन्हीं चारोंको मिलाकर सम्पूर्ण राम हैं। जैसे सब कुछ 'ॐ' है, वैसे ही सब 'रां' है। 'रां' और 'ॐ' में माहात्म्य तथा महिमाकी दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं है। अतएव यह सम्पूर्ण जगत् श्रीरामकी ही महत्ताका प्रकाशन कर रहा है। इसी मूलतत्त्वपर ध्यान देना आवश्यक है।

सीताका वैदिक रूप—भगवती सीताके वैदिक तात्त्विक स्वरूपका वर्णन सीतोपनिषद्में उपलब्ध होता है। यह उपनिषद् अथर्ववेदसे सम्बन्ध रखता है। इसी वैदिक स्वरूपसे मिलते-जुलते स्वरूपका वर्णन शौनकीय तन्त्रमें भी उपलब्ध होता है। सीतोपनिषद्के वर्णनकी ओर ध्यान देनेपर भगवती सीताका रूप भगवान् रामके साथ साक्षात् सम्बन्ध रखनेवाला माना गया है। प्रथमतः 'सीता'-अभिधानपर दृष्टिपात कीजिये। सीताजी शक्तिरूपा हैं। प्रणवकी प्रकृतिस्वरूपा होनेसे वे मूलप्रकृति अर्थको द्योतित करती हैं। 'सीता'-अभिधानमें तीन अक्षरोंका योग उपलब्ध है, जिनके पृथक् अर्थ बताये जाते हैं—स+ई+ता।

यह उपनिषद् 'स' अक्षरके अनेक अर्थ बतलाता है।

(१) 'स' का अर्थ है—सत्य, अमृत, प्राप्ति (सर्वत्र गमनकी शक्ति-वाचक ऐश्वर्य अथवा सिद्धि)

तथा चन्द्रमा।

(२) ई—उपनिषद् विष्णुको समस्त जगत्-प्रपंचका बीज बतलाता है। इसी बीजका ईकार योगमायास्वरूपा माना जाता है।

(३)ता—इस अक्षरका तात्पर्य है महालक्ष्मीका स्वरूप, जो प्रकाशमय एवं विस्तारकारी (अर्थात् जगत्स्रष्टा) बतलाया गया है।

सीताके तीन स्वरूप बतलाये गये हैं। प्रथम स्वरूपसे वे ब्रह्ममयी हैं। वे बुद्धिरूपा हैं, जो स्वाध्यायकालमें प्रसन्न होनेपर बोधको प्रकट करती हैं। अपने दूसरे रूपमें वे पृथ्वीपर उत्पन्न बतायी जाती हैं, जो सीरध्वज जनकराजकी यज्ञभूमिमें हलके अग्रभागसे उत्पन्न हुई थीं। वे अपने तृतीय स्वरूपसे ईकाररूपिणी अव्यक्तस्वरूपा हैं। इन तीनों रूपोंको मिलाकर 'सीता' नामसे व्यवहृत की जाती हैं।

वे श्रीसीताजी शक्त्यासना हैं—शक्तिस्वरूपा होकर इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति एवं साक्षात्शक्ति—इन तीन रूपोंमें प्रकट होती हैं। इच्छाशक्तिमय उनका स्वरूप भी त्रिविध होता है—श्रीदेवी, भूदेवी तथा नीलादेवीके रूपमें कल्याणरूपा, प्रभावरूपा तथा चन्द्र, सूर्य एवं अग्निरूपा वे ही होती हैं। श्रीसीताजी अपने श्रीदेवीरूपमें तीन प्रकारका रूप धारणकर भगवान्के संकल्पानुसार सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये सर्वदा व्यक्त होती हैं। वे लोककल्याणार्थ श्री तथा लक्ष्मी-रूपमें लक्षित होती हैं। भूदेवी सम्पूर्ण जलमय समुद्रोंके संग सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीके रूपमें चौदहों भुवनोंका आधार प्रणवस्वरूपा होकर व्यक्त होती हैं। नीलादेवी सम्पूर्ण ओषधियों एवं समग्र प्राणियोंके पोषण-निमित्त सर्वरूपा हो जाती हैं। इस प्रकार नाना शक्तियोंके रूपमें अभिव्यक्त होकर भगवती सीता भगवान् रामचन्द्रको इस भूमण्डलके रक्षण तथा कल्याणके लिये नाना प्रकारकी सहायता प्रदानकर इस विश्व-ब्रह्माण्डका विधिवत् संचालन करती हैं।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने बालकाण्डमें चारों भाइयोंके नामकरणके अवसरपर ऊपर दिये गये तथ्यका प्रतिपादन किया है। मिथिलामें विवाहके अवसरपर भी इन तथ्योंका प्रतिपादन उपलब्ध होता है।

राजा दशरथके आग्रहपर गुरु वसिष्ठजीने चारों भाइयोंका नामकरण इस प्रकार किया—आनन्दसिन्धु तथा सुखराशि होनेसे ज्येष्ठ पुत्रका नाम 'राम' रखा। विश्वका भरण तथा पोषण करनेके कारण दूसरे पुत्रका नाम 'भरत' रखा। जिसके स्मरणसे शत्रुओंका नाश होता है, उसका नाम 'शत्रुघ्न' रखा और सकल जगत्के आधार होने के कारण तथा शुभ लक्षणोंके धाम होनेसे सुमित्रानन्दनका नाम 'लक्ष्मण' रखा। इस तथ्यके विषयमें संक्षेपमें तुलसीदासजीका कहना है—

धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी। बेद तत्व नृप तव सुत चारी॥

यहाँ 'वेदतत्त्व' का तात्पर्य ॐकारसे है। लेखके आरम्भमें दिखलाया गया है कि ॐकारके चार अंश होते हैं और इन्हीं अंशोंसे चारों भ्राताओंका नामकरण किया गया है। राम-विवाहके प्रसंगमें भी इसी महनीय वैदिक तत्त्वकी सूचना इन पंक्तियोंमें दी गयी है—

सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥

जैसे जीवके उरमें चारों अवस्थाएँ विभुओंके साथ विराजमान हैं, उसी प्रकार सुन्दर तथा सुन्दरीका संयोग प्रतीत होता है। इसका संक्षेपमें दिग्दर्शन इस प्रकार होगा—

विभु—सर्वज्ञ, प्राज्ञ, हिरण्यगर्भ और विश्व (विराट्)।

सुन्दर—राम, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण।

सुन्दरी—सीता, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति और उर्मिला।

अवस्था—तुरीय, सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्।

गोस्वामी तुलसीदासजीने उपनिषद्के इस तत्त्वको रामायणमें लाकर निगमागमके प्रति अपने प्रेमभावका परिचय दिया है। संक्षेपमें सीताराम युगल सरकारके उपनिषद्-प्रतिपाद्य-स्वरूपका वर्णन इस लेखमें किया गया है। सीताराममें भगवती सीताका प्राधान्य माना गया है। इसलिये उन्हींकी स्तुतिमें लेख समाप्त किया जाता है—

शौरिश्चकास्ति हृदयेषु शरीरभाजां
तस्यापि देवि हृदये त्वमनुप्रविष्टा।
पद्मे तवापि हृदये प्रथते दयेयं
त्वामेव जाग्रदखिलातिशयां श्रयामः॥

श्लोकका आशय यह है कि शरीरधारी समस्त प्राणियोंके हृदयमें भगवान् विष्णु (श्रीराम) विराजमान रहते हैं। उनके हृदयमें भगवती लक्ष्मी (देवी सीता) निवास करती हैं और उनके हृदयमें दया ही दया है। अतः हम उन देवीका ही आश्रय ग्रहण करते हैं।

अध्यात्मवाद ही शान्तिका मूल है

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र)

'मानवता शाश्वत है। सबमें हमारी आत्माका ही अंश है। हम सब चाहे किसी देश, जाति, वर्ण या धर्मके हों, सब मानव हैं। एक ही परमात्माके अंश हैं। सब भाई-भाई हैं। हमारा एक ही परिवार है। हममें कोई ऊँचा, कोई नीचा, कोई सशक्त, कोई अशक्त नहीं है। हमें सबको अपना आत्मभाव देना है'—यह भाव रखनेसे उस विश्वप्रेमका प्रादुर्भाव हो सकता है, जो चिरन्तन है। सब देशोंमें, सर्वकालमें इसका एक ही मापदण्ड है। इसी प्रेमभावसे भेद-भाव दूर हो सकता है। इसी उदार दृष्टिकोणसे हम सब विशाल विश्वके साथ अपना अध्यात्म-सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं ।

अध्यात्म हमें सबको साथ लेकर उन्नति करनेका पाठ पढ़ाता है। वह किसीको पीछे छोड़ केवल कुछ व्यक्तियोंके स्वार्थको महत्त्व नहीं देता है। 'मैं एक'के स्थानपर 'हम सब'की सामूहिक उन्नतिकी बात करता है। जबतक हम अपने-अपने लिये सोचेंगे, तबतक उत्पात होगा, पर यदि हम स्वार्थकी तुच्छतासे उठकर सबके, मनुष्यमात्रके कल्याणकी बात सोचेंगे तो निश्चय ही शान्तिकी ओर बढ़ेंगे । जो मनुष्य खुदगर्जीके दायरेमें जितना बँधा रहता है, वह उतना ही शान्तिसे दूर है। जो दूसरोंके हानि-लाभमें अपना हानि-लाभ देखता है, वह आत्मवादी है। आत्मवादी व्यक्ति पार्टी, जाति या देशकी हदोंमें नहीं बँधता। वह केवल भौतिक उन्नतिसे ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह तो सबकी आध्यात्मिक उन्नतिकी बात सोचता है।

अध्यात्म हमें खुदगर्जीके संकुचित दायरेसे निकालता है। यह स्वार्थवृत्ति ही संसारकी नारकीय और पाशविक मनोवृत्तियोंको उभाड़ रही है। जबतक हम दूसरोंपर शासन करनेकी बात सोचकर सत्ता हथियानेकी कोशिशें करते रहेंगे, तबतक शान्ति स्थापित नहीं होगी। भौतिक शक्तियोंसे कुछ व्यक्ति या राष्ट्र भले ही 'बड़े' बन जायँ, पर सामूहिकरूपसे विश्वका एक बड़ा भाग पीड़ित, शोषित और पतित रहेगा। समृद्धिका सन्तुलन कदापि न हो सकेगा। सामूहिक उन्नति तभी होगी, जब मनुष्यमात्र (चाहे वे किसी देश या जातिके क्यों न हों) 'मैं अकेला' की मर्यादामें सोचना छोड़कर 'हम सब' की मर्यादामें सोचना और काम करना प्रारम्भ करेंगे। सबकी उन्नतिमें हमारी उन्नति है, यह मनोवृत्ति वह भावना है, जिसके प्रसारसे विश्वशान्ति स्थापित हो सकती है। अतः शान्तिवादियोंको चाहिये कि स्वयं परोपकार और परमार्थके लिये उद्योग करें और अपने सम्पर्कमें आनेवालोंको पुण्य, सेवाधर्म, दया, दान, सहयोग आदिमें लगावें।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनानेसे मनुष्यमें हृदय-परिवर्तन होता है। सेनावादी, युद्धवादी या हिंसावादी दृष्टिकोण कुछ कालके लिये भले ही शान्ति स्थापित कर लें, पर अवसर पाते ही वह प्रतिशोधके रूपमें फूट पड़ते हैं। मित्र और परिवारके व्यक्ति भी इस प्रतिशोधमें शामिल हो जाते हैं। यहाँतक कि यह विद्वेष वंश-परम्परागत बन जाता है। यूरोपमें राष्ट्रोंके पारस्परिक विद्वेष शताब्दियोंतक जारी रहे हैं। प्रतिशोधसे पुनः प्रतिशोधकी भावना उत्पन्न होती है और मौलिक बुराई कई गुनी होकर बहुत विस्तृत हो जाती है। मनुष्यकी श्रेष्ठता और उसका देवत्व तथा बहुत-सा समय इन आवेशोंके दुरुपयोगमें लग जाता है। इस प्रकार हिंसा और दमन कभी भी स्थायी शान्ति स्थापित नहीं कर पाते। संघर्षका अन्त चाहे किसी रूपमें क्यों न हो, पूर्ण सन्तोष और शान्ति स्थापित नहीं करता; न दोनों पक्ष रोषहीन और शंकाहीन होकर आगे बढ़ पाते हैं। इसलिये युद्ध, हिंसा, दमन और क्रोधका मार्ग साधन और परिणाम दोनों दृष्टियोंसे असफल है।

अध्यात्म झगड़ेकी मूल जड़ोंको ही उखाड़ता है। इस दृष्टिकोणको अपनानेसे वे कारण ही उत्पन्न नहीं होते जिनसे युद्धका वातावरण पैदा होता है। अध्यात्मकी नींव सत्य और न्यायपर टिकी है। 'जो सत्यका मार्ग है, वही न्यायका मार्ग है। चाहे किसीका बने या बिगड़े, वही अपनाना चाहिये।' 'नैतिक क्षेत्रमें प्रेम ऐसी वस्तु है, जिससे दो शक्तियाँ परस्पर टकराकर अस्थायी और असन्तोषजनक परिणाम उत्पन्न करके नष्ट नहीं होतीं, बल्कि सम्मिलित होकर उत्पादक नयी दिशामें कार्यान्वित होने लगती हैं।' प्रेमका परिणाम विजय करनेसे भी उच्च होता है; क्योंकि इसमें किसी पक्षके नष्ट होने या दबनेकी या झुकनेकी बात नहीं रहती; इस दृष्टिकोणसे किसीकी शक्तिका अपव्यय नहीं होता। प्रेमका उदार और व्यापक प्रयोग विश्वशान्तिका

अमोघ उपाय है। इससे हममें वह मित्रतापूर्ण मनोवृत्ति विकसित होती है, जिसकी मानसिक शान्ति और स्वास्थ्यके लिये परम आवश्यकता है। यह पता लग चुका है कि मित्रता और प्रेमके द्वारा विरोधीके हृदयमें स्वयं ही यह आत्मप्रेरणा उत्पन्न होती है कि मैं बुराई या दोषको दूर करूँ। वस्तुतः शान्तिवाद मानवजातिके स्वाभाविक विकासके अनुसार ग्रहण किया हुआ एक सिद्धान्त है। यह मनुष्यमात्रमें बन्धुत्व और एकताकी भावना दृढ़ करता है।

अध्यात्म-भाव हमारा दायरा विस्तृत करता है। सांसारिक दृष्टिकोणवाला व्यक्ति या राष्ट्र अपने संकुचितसे दायरेमें, स्वयं अपने सुख-दुःख, पाप-पुण्य, उन्नति और स्वार्थ-सिद्धिमें लगा रहता है। वह अपने ही भलेकी सोचा करता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति या राष्ट्र जितने अंशोंमें आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाता है, उतने ही अंशोंमें वह जाति, धर्म, समाज, देश और राष्ट्रकी संकुचित सीमाओंसे क्रमशः आगे बढ़कर समग्र विश्व और मानवताको अपनी सेवा और प्रेमका केन्द्र मानकर कर्म करता है। उसका स्थान उतना ही ऊँचा हो जाता है और आध्यात्मिक जगत्‌में उसका दर्जा भी उतना ही ऊँचा माना जाता है। उसे हम विश्ववादी कह सकते हैं। ऐसे व्यक्तिसे सदा-सर्वदा सारे मानव-समाजका हित-साधन होता है।

स्वार्थकी संकुचित नीति अपनानेसे विश्वमें बहुत युद्ध, हिंसा, नाश, अपहरण और अशान्ति फैली है। अब समय आ गया है जब संसारके नैतिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थानके लिये हमें अध्यात्मवादको ही अपनाना चाहिये। अपने लिये नहीं, 'सबके हित और सबकी उन्नति' के लिये सोचना चाहिये। गीतामें कहा गया है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

'हे अर्जुन! जो सब प्राणियोंके सुख और दुःखको अपने सुख और दुःखके समान समझता है, वह परम श्रेष्ठ योगी है।'

अध्यात्म हमें मैत्रीभाव करना सिखाता है। अध्यात्मवादी प्राणिमात्रके लिये सत्, पवित्र, प्रेममय और कल्याणकारी भाव रखता है। जबतक हमारे अन्दर क्षुद्र अहंवृत्ति रहती है, तबतक स्वार्थ, ईर्ष्या, राग, द्वेष, छल, प्रपंचमें मन लगा रहता है। मैत्रीभावनाको अपनानेसे इन सबका स्वतः क्षय हो जाता है। मैत्रीके व्यापक प्रयोगसे संसारकी द्वेष-कटुता आसानीसे मिटायी जा सकती है। मैत्रीभावको अपने चरित्रमें समुचित स्थान देनेवाला व्यक्ति और राष्ट्र अपने चारों ओर आत्मीयता, स्नेह, सहयोग, उदारता और प्रसन्नताका ही वातावरण फैलाता है।

एक विचारकके अनुसार 'अध्यात्म और कुछ नहीं, मनुष्यके दृष्टिकोणको ऊँचा एवं उदार रखनेकी एक प्रक्रिया है। भारतीय मनोविज्ञानका, योग और धर्मका आधार यही है। इसे अक्षुण्ण रखनेके लिये हमारा ऋषिवर्ग अपना सारा जीवन ही उत्सर्ग करता था। उसका प्रयत्न यही रहता था कि लोग निम्नकोटिके संकुचित विचारोंसे दूर रहें।' अध्यात्मरूपी अमृतसे स्निग्ध उच्चकोटिके विचार जनताके मनःक्षेत्रमें भरनेके लिये वे अहर्निश घोर प्रयत्न करते थे। उनके आध्यात्मिक ज्ञानका ही फल था कि भारत लाखों वर्षोंतक अपनी उत्कृष्टता स्थिर रख सका और जगद्‌गुरु चक्रवर्ती शासक एवं स्वर्ग-सम्पदाओंका स्वामी बननेका सौभाग्य प्राप्त होता रहा। आज विश्वशान्तिके लिये अनेक वाद-विवाद किये जाते हैं, पर मनुष्यकी आन्तरिक उदारताका स्तर दिन-दिन गिरता जा रहा है। यदि हमें सम्पूर्ण संसारमें शान्ति स्थापित करनी है तो सबसे पहले मनुष्यमात्रके भावनाक्षेत्रको, मस्तिष्कको सही करना पड़ेगा। इसका उपाय आध्यात्मिक दृष्टिकोणको अपनाना ही है। मनुष्योंकी अन्तरात्मामें गहराईतक सद्भावनाओंको प्रतिस्थापित करनेका कार्य अध्यात्मका है।

अध्यात्म हमें सिखाता है कि हम सब मानव एक ही परिवारके सदस्य हैं। स्वार्थकी भावनासे परे हैं। सारी वसुन्धरामें हमारा कुटुम्ब फैला हुआ है। समष्टिकी उन्नति ही सच्ची उन्नति है। भारतीय मनीषियोंने विश्वशान्तिका जो उपाय बताया है, वह इस प्रकार है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

संसारके सभी लोग (चाहे वे किसी देश, जाति, वर्ण या सम्प्रदायके क्यों न हों) सुख पायें; सभी रोगरहित हो जायँ; सभी कल्याणका दर्शन करें और कोई भी किसी प्रकार दुखी न हो। इस आध्यात्म-भावनाको अधिक-से-अधिक फैलाने और सच्चे मनसे व्यवहारमें लानेसे विश्वशान्तिकी समस्या हल हो सकती है। परहितकी कामना और विश्वबन्धुत्वका प्रसार करनेसे सारी उलझनें सुलझ सकती हैं।

रामनाम—एक अचूक औषधि

(श्रीरमेशचन्द्रजी राय)

रामनाम की औषधी खरी नियत से खाय।
अंग रोग ब्यापे नहीं महा रोग मिट जाय॥

श्रीराम-नाम 'संसारामयभेषजम्' संसाररूपी रोगके लिये सबसे अचूक औषधि है। एक किंवदन्ती है कि चरकाचार्य (जिन्होंने चरक-संहिता नामक आयुर्वेदका एक श्रेष्ठ ग्रन्थ लिखा है)-से किसीने पूछा कि इस शरीरको किस तरह चिरकालतक स्वस्थ रखें? आचार्यने कहा—

इदं शरीरं शतसन्धिजर्जरं
पतत्यवश्यं परिणामि पेशलम्।
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढदुर्मते
निरामयं रामरसायनं पिब॥

अरे! शत-शत सन्धि-जर्जर इस शरीरके लिये क्या दवा पूछ रहा है? यह एक-न-एक दिन अवश्य समाप्त होनेवाला है। यदि तू अपना भला चाहता है तो **'निरामय'** अर्थात् रोगरहित राम-रसायनका छककर पान कर। यही भवरोगकी सर्वश्रेष्ठ औषधि है।

राम-नाम तारक मन्त्र है। राम-नामको निरन्तर भजनेसे हमारे शरीरमें एक ऊर्जा (शक्ति) पैदा होती है। उस ऊर्जाका नाम राम (शक्ति) है, जो चेतन, अनादि, अनन्त, अखण्ड, नित्य, व्यापक है। 'राम' शब्दमें तीन अक्षरोंका समावेश है (र + आ + म = राम)

र—'र' अक्षर सूर्यकी शक्ति (ऊर्जा) रखता है, जो विवेक, बुद्धि प्रदान करता है।

आ—'आ' अक्षर अग्निकी शक्ति रखता है, जो हमारे जीवनके दुष्कर्मों (पापों)-को जला डालनेमें परिपूर्ण है।

म—'म' अक्षर चन्द्रमाकी शक्ति रखता है, जो हमारेमें अमरत्व प्रदान करता है एवं मनके विकारोंको शान्त करता है (मन ही बन्धन और मोक्षका कारण है)।

भगवान् शंकरजीने रामनामकी महिमाका वर्णन करते समय पार्वतीजीसे यही कहा है।

रामनाम महामन्त्र है—**'मननात् त्रायते भयात् इति मन्त्रः'**। जिसका मनन (भजन) करनेपर जो हमारी भयसे रक्षा करे, उसे मन्त्र कहते हैं। रामनाम जपनेसे जापककी रक्षा होती है।

रामनाम मन्त्रकी बड़ी विशेषता है कि रामनाम किसी भी भाँति जपे जानेपर जापकका कल्याण ही करता है।

गोस्वामीजी कहते हैं—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
(रा०च०मा० १।२८।१)

प्राकृतिक उपचारके इलाजोंमें सबसे समर्थ इलाज रामनाम है। इसमें अचम्भेकी कोई बात नहीं है। आध्यात्मिक रोगों (आधि-व्याधियों)-को मिटानेके लिये रामनामके जपका इलाज बहुत पुराने जमानेसे हमारे यहाँ होता आया है। रामनामका जप सब इलाजोंका इलाज है। समस्त बीमारियोंको मिटानेके लिये निदान किया जाता है। उसीको ऊर्जा (शक्ति) कहते हैं। रामनाम निरन्तर जपनेसे हमारे अन्दर शक्ति या ऊर्जा उत्पन्न होती है, जो अनादि, चेतन, गुणविहीन, निरूप-निराकार, दृश्यहीन (जिसे देखा न जा सके) ही हमारे शरीरमें व्याप्त रहती है। यही ऊर्जा (शक्ति) संसारके समस्त कार्योंका आधार है। यह न तो जन्म लेती है और न ही नष्ट होती है, सिर्फ रूपान्तरित होती है। इसीको ब्रह्म कहते हैं। जब यह प्रकृति जिसे हम माया कहते हैं, दोनों मिलते हैं तो यह अनेक रूपोंमें बदल जाती है। प्रकृति मूल रूपमें जड़ है परंतु इस ऊर्जा (शक्ति)-के मिलते ही क्रियाशील हो जाती है। इस ऊर्जा (शक्ति)-के निकलते ही चैतन्य दिखनेवाला जीव जड़ (मृत) हो जाता है। इसी ऊर्जाका नाम राम है, जो व्यक्ति उसका भजन करता है वह मनुष्य धन्य हो जाता है। इसलिये गोस्वामीजी कहते हैं कि यह ऊर्जा सर्वशक्तिमान् चेतन होनेके कारण सब कुछ करनेमें पूर्णतः समर्थ है।

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥
(रा०च०मा० ७।११९ख)

रामनाम सिर्फ किसी व्यक्तिविशेषके लिये ही नहीं है। यह समस्त मानवके लिये है। वेद-पुराणोंमें लिखा है, जो रामनाम लेता है, वह अपने पास भारी खजाना जमा करता जाता है और यह तो ऐसा खजाना है, जो कभी घटता नहीं है। जितना इसमेंसे निकालो उतना बढ़ता ही जाता है। इसका अन्त नहीं है और जैसा कि बृहदारण्यकोपनिषद् कहता है—**'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'** 'पूर्णमेंसे पूर्ण निकालो तो पूर्ण ही बाकी रहता है।'

सन्त कबीर कहते हैं—

कबिरा सब जग निर्धना धनवंता नहि कोय।
धनवंता सोइ जानिये जाके राम नाम धन होय॥

रामनाम सम्पूर्ण रोगोंका उपचार है। फिर चाहे वे शारीरिक हों, मानसिक हों या आध्यात्मिक हों। रामनामकी महिमा इतनी अपार है कि उसका जितना गान किया जाय, उतना ही थोड़ा है। लेकिन शर्त यह है कि अश्रद्धालुओंके बीच रामनाम-महिमाका वर्णन न करें। रामनाम जब आप मनसे भजोगे तो जो बुरे विचार आपके मनमें आते हैं, वे शान्त हो जायँगे। यदि काम या लोभ आपको सताते हैं तो रामनाम-जैसा कोई जादू नहीं, जो एक दिन इन समस्त विकारोंको मिटा देगा। इसके लिये हमें रामनामका जप निरन्तर करते रहना होगा तो एक दिन आपके कण्ठसे हृदयतक उतर जायगा और रामबाणकी भाँति अमोघ प्रभावकारी होगा।

सब रोगोंकी जड़ मोह है। उन व्याधियोंसे फिर और बहुतसे रोग उत्पन्न होते हैं। काम वात है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है और क्रोध पित्त है, जो सदा छाती जलाता रहता है अर्थात् रोगके मूलमें वात, कफ और पित्त हमारे निर्दोष शरीरमें रहते हैं। जब ये बिगड़ जाते हैं तो हम रोगग्रस्त हो जाते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं—

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

(रा०च०मा० ७।१२१।२८—३१)

रोग मिटानेका सबसे सरल उपाय है कि आप कोई कार्य कर रहे हैं तो करते रहिये, पर काम करते समय मन-ही-मन रामनाम याद करते रहिये। ऐसा करनेसे एक समय ऐसा भी आ जायगा कि सोते-जागते समय रामनाम आपका साथी बन जायगा और आप अनुभव करेंगे कि मैं तन, मन और आत्मासे स्वस्थ और तन्दुरुस्त हो रहा हूँ और प्रभु श्रीराम कृपा कर रहे हैं। एक समय आ जायगा कि हमारे रोग नष्ट हो जायँगे।

राम-नाम जपना ही भक्ति है। जब हम रामनाम मन या वाचा कर्मसे श्रद्धासे जपने लगते हैं तो यही भक्ति संजीवनी बूटीका कार्य करती है।

गोस्वामीजी कहते हैं—

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

(रा०च०मा० ७।१२२।७-८)

नाम प्रभाव सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो।

अगर कोई हमसे कहे कि राम-नामके प्रभावसे पत्थरपर कमल खिल गया, तो तुलसीदासजी मान जायँगे।

प्रभु श्रीरामके नाम (रामनाम)-के विशेष गुणको बताते हुए वे कहते हैं—

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन॥

(रा०च०मा० ७।१२२ख)

प्रभु मच्छरको ब्रह्मा और ब्रह्माको मच्छर बना सकते हैं। मैं दृढ़ विश्वाससे कहता हूँ कि रामनामपर कभी अविश्वास मत करो। अविश्वास करना महान् पाप है। रामनामकी शरण लेकर रामनामका भजन करनेसे आपके जीवनमें शान्ति, ऐश्वर्य अवश्य आयेगा, कारण मेरे जीवनमें जो कुछ परिवर्तन हुआ है, वह सिर्फ रामनामसे ही है।

आपसे प्रार्थना है कि आप एवं आपका परिवार रामनाम जपनेको अपने जीवनकी नित्य क्रिया बना ले, जिससे भविष्यमें भयानक रोगोंसे मुक्ति पा सकेंगे; क्योंकि रामनाम अचूक औषधि है।

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सोइ कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥

(रा०च०मा० ७।१२४ क)

ध्येयको शुद्ध करो

(डॉ० श्रीमुरलीधर चाँदनीवाला)

हमारा जीवन छोटे-बड़े ध्येयको लेकर चलता है। मुख्य ध्येय भले ही एक हो, परंतु प्रत्येक दिन, प्रत्येक घड़ीका अपना एक स्पष्ट ध्येय होता है। आम आदमीका जीवन छोटे-छोटे ध्येयको पूरा करनेमें बीत जाता है। बिरले होते हैं, जो जीवनके लिये ऊँचे ध्येयको चुनते हैं, भले ही उसे पानेके लिये जीवन ही छोटा पड़ जाय।

ध्येयका अर्थ है—ध्यान करनेयोग्य। जैसा ध्येय होता है, वैसा ही कर्म उपस्थित होता है। ध्येय बनाना अलग बात है, उसे पानेके लिये अपराजित प्रयत्न करना अलग बात। ध्येय आदि सर्वांग शुद्ध नहीं हैं, तो विघ्न अवश्यम्भावी होते हैं और क्रियासिद्धि प्रायः नहीं होती।

ध्येय जितना शुद्ध होता है, उसे प्राप्त करनेहेतु सहायता भी उतनी ही शुद्ध मिलती है। प्रयत्नकी असफलता इस बातकी द्योतक है कि ध्येय-शुद्धि नहीं हुई। ध्येय-शुद्धि ही मनुष्यका भाग्य है। अन्य चीजोंकी तरह ध्येयका भी संस्कार होता है। यह अत्यन्त पेचीदा काम है। इसे करनेके लिये अपने भीतर उतरना होता है। ध्येय-शुद्धि न हो तो कार्यका आरम्भ ही नहीं होता, ऊपरी तौरपर हो भी जाय तो शीघ्र ही उसका पतन हो जाता है।

प्रत्येक क्षण हम एक चुनाव करते हैं। कभी यह चुनाव अकेला मन करता है, कभी अकेली इन्द्रियाँ। जब हमारी सम्पूर्ण सत्ता अर्थात् आत्मा, मन, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ और शरीरके सब कोषाणु मिलकर यह चुनाव करते हैं, तब एक शुद्ध ध्येय बनता है। हमारी सत्ताका एक भी कोषाणु यदि चुनावमें असहमत होता है, तो ध्येय अशुद्ध बना रहता है और यत्न-सिद्धिकी सम्भावनापर पर्दा पड़ा रहता है। वाल्मीकि ने क्रौंचवधके दुःखको जिस क्षण अपने भीतर अनुभव किया, उस क्षण वाल्मीकिकी आभ्यन्तर और बाह्य सत्ता उनके साथ थी, इसलिये महाकाव्यका जो ध्येय उनके भीतर प्रकट हुआ, वह शुद्ध ध्येय था। यदि सत्ताका कोई अंश ध्येय-साधनाके दौरान असहमत है या असहयोग करता है, तो मनको उतने अंशपर शासन करनेके योग्य बनना होता है। मनके दृढ़संकल्प और प्रबल इच्छाशक्तिके आगे वह अंश समर्पित हो जायगा। यह समर्पण इस तरहका होना चाहिये, जिससे उस अंशके भी अवयव बलपूर्वक नहीं घसीटे जाने चाहिये।

हमारी सत्ताका बहुलांश जड़ता पसन्द करता है। उसे यथास्थिति अच्छी लगती है। गीतामें अर्जुनके लिये भागवत उपदेशकी जो दिव्य परिस्थिति उत्पन्न हुई, वह कोई संयोगमात्र नहीं था। अर्जुनका एक-एक रक्तकण, छोटे-से-छोटा अणुतक सचेतन था और भगवान्‌को पुकार रहा था। अर्जुन जब सभी विरोधी सत्ताओंको जीत गया, तभी भगवान्‌के दिव्य वचनोंको ग्रहण करनेके योग्य बना। ध्येय-शुद्धिके लिये अर्जुनके प्रयत्न अपनी ओरसे प्रबल थे, तभी भगवान्‌की ओरसे सहायता भी उसी अनुपातमें मिलती चली गयी। अर्जुनकी ध्येय-शुद्धिमें भगवान्‌ने जो हाथ बँटाया, वह यही दिखाता है कि दिव्य सत्ताएँ सहयोगके लिये सदैव तत्पर रहती हैं।

आत्मा एक चिरन्तन अग्नि है। ध्येयकी अशुद्धियाँ उस अग्निमें जलकर राख हो जाती हैं। शुद्ध ध्येयका सोना तपकर कुन्दन हो जाता है। आत्माके सम्मुख जाते समय हमारी भूमिका साक्षात्कारके लिये गये एक प्रत्याशीकी होनी चाहिये। आत्माके पास पहुँचनेका अभ्यास जिन्हें नहीं है, उनके व्यक्तित्वमें गम्भीर गड़बड़ियाँ उत्पन्न होती रहती हैं और ठीक सामंजस्य कभी नहीं बैठ पाता। शरीर और मनमें होनेवाले समस्त उपद्रव असमंजसताके ही कारण होते हैं। आत्मासे बड़ा वैद्य, आत्मासे बड़ा आचार्य कोई नहीं। अपना ध्येय सबसे पहले आत्माको बतलाना चाहिये। वह हमारे भीतर न केवल सामंजस्य रचेगा, अपितु ध्येय पूरा होनेतक उसकी रक्षा भी करेगा।

आत्माकी ओरसे ध्येय-शुद्धिके संकेत स्पष्ट रूपसे मिलते हैं। ये संकेत 'हाँ' या 'ना' के रूपमें नहीं, अपितु शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक क्रियाके आरम्भके रूपमें होते हैं। कई बार हम ध्येय-पूर्तिके लिये एक

लम्बा फासला तय कर जाते हैं, तब आत्माके संकेत छाया बनकर पीछे चले आते दिखायी देते हैं। ध्येयको लेकर आत्माकी वैधानिक चेतावनियाँ हम भले ही देरसे पढ़ पाते हैं, परंतु ये चेतावनियाँ अपना काम बहुत पहले ही प्रारम्भ कर देती हैं। जब भी आप किसी काममें हाथ डालते हैं, तो थोड़ा रुकिये, ध्यान कीजिये और आत्मासे सलाह कीजिये। इस सलाहके बिना आपके काम अधूरे छूट सकते हैं, कार्यमें बाधा पड़ सकती है और हताशामें आप कोई अनुचित काम कर सकते हैं।

ध्येयके शुद्धिकरणका सबसे सरल और अन्तिम उपाय है—एक ध्येय आत्माके सामने खोलकर रख दो। ऐसा करते समय शान्त, निश्चल और एकाकी होना पड़ता है। अपनी सारी मान्यताएँ, पूर्वाग्रह, दुराग्रह, द्वन्द्व और क्षुद्र अहंकारको पीछे छोड़कर आत्माके पवित्र मन्दिरमें प्रवेश करनेका साहस करना सम्भव है। आत्मा प्रभुका वह अंश है, जो हमारी सत्ताके केन्द्रमें है। उच्चकोटिके ध्येय कई बार उसी अंशसे बाहर आते हैं और कार्यरूपमें परिणत होते हैं। ध्रुव, नचिकेता, बुद्ध और महावीरके जीवनके ध्येय उसी अंशसे निकलते थे, इसलिये वे स्वयंसिद्ध थे।

बोध-कथा—

उत्कलमणिकी उदात्त भावना

उत्कलमणि पण्डित गोपबन्धुने जनसेवाका बीड़ा बचपनसे ही उठाया था और आजीवन उसीमें लगे रहे। उन उदारमनाके विशाल हृदयमें प्राणीमात्रके लिये 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना कूट-कूटकर भरी थी।

महानदीपर हीराकुण्ड बाँध बननेसे पूर्व उड़ीसामें प्रायः हर वर्ष या तो भयंकर बाढ़ आया करती या फिर घोर सूखेके कारण अकाल पड़ता। उस वर्ष ऋषिकुल्या नदीमें अचानक वर्षाके कारण उफान आ गया। कई गाँव पानीमें डूब गये और अनेक गाँव पानीके घेरेमें आ गये। जिस समय यह खबर सत्यवादी (पुण्यतीर्थ साक्षीगोपालके निकट गोपबन्धुका निवासस्थान) पहुँची, उस समय गोपबन्धुका इकलौता पुत्र गम्भीररूपसे बीमार था। खबर मिलते ही गोपबन्धुके चेहरेपर पुत्रके रोगसे उत्पन्न चिन्ता एक और ही तरहकी गम्भीरतामें बदल गयी। कुछ मिनट बाद उन्होंने अपने साथियों—पं० नीलकण्ठदास और गोदावरीश आदिको बुलाया और कहा—'देखो! मैं कोई डॉक्टर-वैद्य तो हूँ नहीं! बालकका इलाज डॉक्टर कर रहे हैं। देखभाल भी मैं नहीं कर रहा हूँ, तुमलोग ही कर रहे हो। सेवा-शुश्रूषा इसकी माँ कर रही है। उधर बाढ़से घिरे वे हजारों लोग असहाय हो मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तनिक उन्हें देखकर आता हूँ।'

साथमें लिया उन्होंने श्रीधर ओताको (जो आगे चलकर श्रीधर उद्गाताके नामसे प्रसिद्ध हुए) और उफनती ऋषिकुल्यामें उतर गये। हाथमें दवाका बक्सा, लालटेन, माचिस। नावमें कुछ चिउड़ा, चावल, गुड़ तथा कुछ कपड़े आदिका संग्रह स्वयं ही करके निकल पड़े विपत्तिग्रस्त लोगोंके बीच राहत-कार्य करने। उधर सरकारको उस इलाकेमें उद्धारकार्य शीघ्र आरम्भ करनेके लिये खबर भेजी गयी। तीन-चार और नावें ठीक की गयीं ताकि बाढ़के घेरेमें फँसे लोगोंके प्राण बचाये जा सकें। तीन-चार दिनोंतक रात-दिन निरन्तर यह कार्य चलता रहा। गोपबन्धु सारी दुनिया भूलकर अधिक-से-अधिक लोगोंको बचानेमें लगे रहे। ऋषिकुल्याका पानी जब कम हो गया, सारी सामग्री बाँट दी गयी, सरकारी और गैरसरकारी सहायताकार्य जब पूरे व्यवस्थित ढंगसे शुरू हो गये, तब ही वे घर लौटे। सत्यवादीमें सन्नाटा छाया हुआ था। गोपबन्धु पत्नीके पास आये। विकल होकर वह चीख पड़ी—'मेरा इकलौता लाला चला गया! आपने उसे बचानेके लिये कुछ नहीं किया।' धीरज तो खैर कहाँ रहता, उनके कोमल हृदयमें। पत्नीकी पीठ थपथपाकर सान्त्वनार्थ इतना ही कहा—'हाँ, यह ठीक है। परंतु वे हजारों बाढ़से बच गये, वे भी तुम्हारी ही सन्तान हैं। यह एक ही तो गया है। उन जीवित हजारों सन्तानोंके चेहरेपर आयी हँसीमें अपने आँसू पोंछ डालो!' ऐसे थे वे उदारमना महामानव, अद्भुत था उनका मानवप्रेम और उत्पीड़ितोंके लिये समर्पित भाव!—शंकरलाल पुरोहित

परम शान्तिका उपाय

(सन्तप्रवर श्रीपथिकजी महाराज)

अपने दोषोंको दुःखका कारण न समझकर ही मानव दूसरोंको दोषी ठहराते हैं और ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा आदि दुर्विकारोंसे अपना अन्तःकरण कलुषित करते रहते हैं। विचारहीन, अज्ञानी मनुष्य अपने भावों, विचारोंके अनुसार अनुमानसे ही दूसरोंमें दोषोंकी कल्पना करके स्वयं दुखी होते हैं, इतना ही नहीं बल्कि दुःखसे निकटवर्तियोंको भी दुखी करते रहते हैं।

जिस प्रकार दूसरोंमें मनमाना दोषारोपण करते हुए मनुष्य स्वयं दोषी होकर दुखी होता है, उसी प्रकार दूसरोंमें सद्गुणोंकी भावना करते हुए वह स्वयं सद्गुणी होकर सुखी हो सकता है। अपने-आप अनुमानतः दुखी होना अच्छा नहीं है, बल्कि सुखी होना ही अच्छा है। जिस प्रकार अपने-आप दोषोंके कारण दुखी होकर मनुष्य दूसरोंको दुखी करता रहता है, उसी प्रकार अपने भावित गुणोंसे सुखी होकर विचारवान् पुरुष दूसरोंको भी सुखी करता रहता है। विचारवान् दूसरोंको दुखी करके कभी सुख नहीं चाहता, प्रत्युत दूसरोंको सुख पहुँचाते हुए दुःख स्वीकार कर लेता है।

आप बुद्धिमानीसे स्ववश सुख तथा परवश दुःखको ही स्वीकार कीजिये, इसी प्रकार स्ववश दुःख और परवश सुखका त्याग कीजिये। जब आप किसी दुःखके कारण अपने परमाराध्य प्रियतमको भूल जायँ, तब आपको जान लेना चाहिये कि आपका अपने प्रियतम प्रभुसे भी बढ़कर किसी प्रकारके सुखसे सम्बन्ध है, जिसकी चाहमें आप विक्षिप्त हो रहे हैं। क्योंकि पूर्णभक्त या प्रेमी तो भयानक-से-भयानक दुःखोंमें भी अपने प्रियतम प्रभुका चिन्तन-ध्यान करते हुए सब कुछ भूला रहता है।

सन्तका वाक्य है कि जो तुमसे स्नेह करते हैं, उनसे स्नेह किया तो क्या किया, जो तुमसे शत्रुता करते हैं, उनसे स्नेह करो, घृणा एवं बुराई करनेवालोंकी भलाई करो।

वास्तवमें मानव-जीवनके साथ दैवी और आसुरी—दोनों प्रकारकी प्रकृति होती है। इन दोनोंमें जिस किसी एकका पक्ष लिया जाता है, वही प्रबल हो जाती है। अतः आप दैवी प्रकृतिके सद्भावोंका ही निरन्तर पक्ष लेते रहें तथा अहंकार, अपनी प्रशंसा और क्रोधका त्याग करें।

जिनके हृदय पवित्र हैं, जिनके साथ ज्ञानरूपी प्रकाश है, वे क्रोध, रोष, अधीरता और चिड़चिड़ापन आदि दोषोंसे रहित होते हैं; क्योंकि ये दोष दुर्बल और अयोग्य पुरुषोंमें रहते हैं। यदि आप साधारण मनुष्यसे देवता होना चाहते हैं तो प्रत्येक प्राणीके लिये शान्ति और रक्षाके विचार रखें, चाहे वह आपका शत्रु ही क्यों न हो। ईर्ष्याका उत्तर ईर्ष्यासे न दें, वरन् उनपर कृपा रखें। ईर्ष्या तुच्छ, दीन, अन्धी और हीन है। प्रेम महान्, धीमान्, दूरदर्शी और आनन्ददायक है।

जैसे-जैसे मनुष्य दूसरोंकी बुराई देखना छोड़ता जाता है, वैसे-ही-वैसे वह स्वयं पापों, दुःखों, क्लेशोंसे मुक्त होता जाता है। इसलिये दूसरे आपके लिये चाहे जितने कटु शब्दोंका प्रयोग करें, आप बुरा न मानिये। जो आपसे घृणा करें, आत्मदमन और ज्ञानवृद्धिके द्वारा उनसे स्नेह करना सीखिये।

दूसरोंकी दशा समझनेके लिये प्रथम ही उनके विषयमें बुरे विचार न बाँध लीजिये। उनसे सहानुभूति रखनेके लिये पहले निष्पक्ष होकर उनकी दशा समझ लीजिये। अपना विचार भूलकर दूसरोंका विचार करना, इसीको सहानुभूति कहते हैं। वास्तवमें जो जितना दयावान् है, उतना ही वह शक्तिशाली और बुद्धिमान् है। प्रेमीके मतमें शक्तिकी शोभा रक्षा करना है न कि नाश करना।

जीवन सबमें एक है, केवल शक्ति और बुद्धिमत्तामें न्यूनाधिकताके कारण प्राणियोंमें भेद है।

मनुष्य सर्वत्र इस मिथ्या विश्वाससे तबतक धोखा खाते हैं, जबतक वे अपना सुख दूसरे मनुष्यों और दूसरे पदार्थोंपर निर्भर रखते हैं, इसीलिये वे सदैव निराशा, शोक और पश्चात्तापसे घिरे रहते हैं। जो विवेकी पुरुष हैं, वे आनन्दको ऐसे पदार्थोंपर निर्भर नहीं करते, जो उनसे चाहे जब छीने जा सकते हों। जबतक आप ऐसी वस्तुका सहारा लेते हैं, जो परिवर्तनशील है, तबतक उस वस्तुके साथ आप भी अपनेको बदलते हुए देखेंगे, जैसे कि देहका सहारा लेनेके कारण देहकी अवस्था-परिवर्तनमें आप अपना परिवर्तन मानते हैं। यदि आप ऐसी वस्तुका सहारा लेते हैं, जो आपसे चाहे जब हटा ली जा सकती है, जो आपके वशकी बात नहीं है तो स्मरण रखिये, उस सहारेके हटते ही आप गिरेंगे और चोटसे आहत होंगे। इसलिये आप ऐसी वस्तुका सहारा लीजिये, जिसको कोई हटा न सके, तभी आप निर्भय रहकर परम शान्तिको प्राप्त कर सकेंगे।

आरोग्य-चर्चा—

नीरोग रहनेहेतु घरेलू नुस्खे

(श्रीशिवनाथजी दूबे)

यहाँपर अनुभवके आधारपर, शरीरको नीरोग रखनेहेतु कतिपय परीक्षित घरेलू नुस्खोंका उल्लेख किया जा रहा है। इनका प्रयोग लाभदायक है—

१. कानदर्द—गेंदेकी पत्तियोंका रस कपड़ेसे छान ले। फिर उसे गरम करके चार बूँद कानमें डालनेसे कान दर्द समाप्त हो जाता है।

२. दाँतदर्द—हल्दी एवं सेंधा नमक महीन पीसकर, उसे शुद्ध सरसोंके तेलमें मिलाकर सुबह-शाम मंजन करनेसे दाँतोंका दर्द बन्द हो जाता है।

३. दाँतोंके सुराख—कपूरको महीन पीसकर दाँतोंपर उँगलीसे लगाये और उसे मले। सुराखोंको भली प्रकार साफ कर ले। फिर सुराखोंके नीचे कपूरको कुछ समयतक दबाकर रखनेसे दाँतोंका दर्द निश्चितरूपसे समाप्त हो जाता है।

४. बच्चोंके पेटके कीड़े—छोटे बच्चोंके पेटमें कीड़े हों तो सुबह एवं शामको धतूरेके पत्तोंका रस निकालकर उसे गरम करके गुदापर लगानेसे चुन्ने (लघु कृमि)-से आराम हो जाता है।

५. पेटके केंचुए एवं कीड़े—एक बड़ा चम्मच सेमके पत्तोंका रस एवं शहद समभाग मिलाकर प्रातः, मध्याह्न एवं सायंको पीनेसे पेटके केंचुए तथा कीड़े चार-पाँच दिनमें मरकर बाहर निकल जाते हैं।

६. छोटे बच्चों (शिशुओं)-का वमन—पके हुए अनारके फलका रस कुनकुना गरम करके प्रातः, मध्याह्न एवं सायंको एक-एक चम्मच पिलानेसे शिशु-वमन अवश्य बन्द हो जाता है।

७. सरलतापूर्वक प्रसवके लिये—हींग भूनकर चूर्ण बना ले, चार माशा शुद्ध गो-घृतमें मिलाकर खिलानेसे सरलतापूर्वक प्रसव होनेमें सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त एक तोला राईके चूर्णमें भुनी हुई हींगका चूर्ण मिलाकर गरम जलके साथ सेवन करनेसे मूढगर्भ (गर्भमें मरा हुआ बच्चा) आसानीसे बाहर आ जाता है।

८. कब्ज दूर करनेहेतु—एक बड़े साइजका नीबू काटकर रात्रिभर ओसमें पड़ा रहने दे। फिर प्रात:काल एक गिलास चीनीके शरबतमें उस नीबूको निचोड़कर तथा शरबतमें नाममात्रका काला नमक डालकर पीनेसे कब्ज निश्चितरूपसे दूर हो जाता है।

९. आगसे जल जानेपर—कच्चे आलूको पीसकर रस निकाल ले, फिर जले हुए स्थानपर उस रसको लगानेसे आराम हो जाता है। इसके अतिरिक्त इमलीकी छाल जलाकर उसका महीन चूर्ण बना ले, उस चूर्णको गो-घृतमें मिलाकर जले हुए स्थानपर लगानेसे आराम हो जाता है।

१०. कुकुर-खाँसी—फिटकरीको तवेपर भून ले और उसे महीन पीस ले। तत्पश्चात् तीन रत्ती फिटकरीके चूर्णमें समभाग चीनी मिलाकर सुबह, दोपहर और शामको सेवन करनेसे कुकुर-खाँसी ठीक हो जाती है।

११. पेशाबकी कड़क तथा जलन—ताजे करेलेको महीन-महीन काट ले। पुनः उसे हाथोंसे भली प्रकार मल दे। करेलेका पानी स्टील या शीशेके पात्रमें इकट्ठा करे। वही पानी पचास ग्रामकी खुराक बनाकर तीन बार (सुबह, दोपहर और शाम) पीनेसे पेशाबकी कड़क एवं जलन ठीक हो जाती है।

१२. फोड़े—नीमकी मुलायम पत्तियोंको पीसकर गो-घृतमें उसे पकाकर (कुछ गरमरूपमें) फोड़ेपर हलके कपड़ेके सहारे बाँधनेसे भयंकर एवं पुराने तथा असाध्य फोड़े भी ठीक हो जाते हैं।

१३. सिरदर्द—सोंठको बहुत महीन पीसकर बकरीके शुद्ध दूधमें मिलाकर नाकसे बार-बार खींचनेसे सभी प्रकारके सिरदर्दमें आराम होता है।

१४. पेशाबमें चीनी (शक्कर)—जामुनकी गुठली सुखाकर महीन पीस डाले और उसे महीन कपड़ेसे छान ले। अठन्नीभर प्रतिदिन तीन बार (सुबह, दोपहर और शाम) ताजे जलके साथ लेनेसे पेशाबके साथ चीनी आनी बन्द हो जाती है। इसके अतिरिक्त ताजे करेलेका रस दो तोला नित्य पीनेसे भी उक्त रोगमें लाभ होता है।

१५. सर्प काटनेपर—नीमका बीज, काली मिर्च एवं लाल रंगवाला सेंधा नमक सम (बराबर)-मात्रामें पीसकर एक तोलाभर लेकर शुद्ध गो-घृतके साथ लेनेसे सर्पविष निश्चितरूपसे उतर जाता है।

सर्प काटनेकी पहचान—यदि सर्पके काटनेकी आशंका हो तो उसके पहचानहेतु काटे हुए स्थानपर नीबूका रस लगा दे। यदि वह स्थान काला (साँवला) पड़ जाय तो यह समझ ले कि सर्पने काटा है, अन्यथा समझे कि सर्पने नहीं काटा है।

१६. बिच्छूके काटने (डंक मारने)-पर—

(क) शुद्ध शहदके साथ लाल मिर्च पीसकर डंकवाले स्थानपर लगानेसे बिच्छूका विष उतर जाता है।

(ख) शहदमें लाल मिर्च पीसकर उस स्थानपर लेप करनेसे बिच्छूका विष तुरंत उतर जाता है।

(ग) जहाँपर बिच्छूने डंक मारा हो, वहाँ मिट्टीका तेल मलनेसे जहर उतर जाता है।

१७. मस्तिष्ककी कमजोरी—मेंहदीका बीज अठन्नीभर पीसकर शुद्ध शहदके साथ प्रतिदिन तीन बार (सुबह, दोपहर और शाम) सेवन करनेसे मस्तिष्ककी कमजोरी दूर हो जाती है और स्मरणशक्ति ठीक होती है तथा सिरदर्दमें भी आराम हो जाता है।

१८. अधकपारीका दर्द—तीन रत्ती कपूर तथा मलयागिरि चन्दनको गुलाबजलके साथ घिसकर (गुलाबजलकी मात्रा कुछ अधिक रहे) नाकके द्वारा खींचनेसे अधकपारीका दर्द अवश्य समाप्त हो जाता है।

१९. खूनी दस्त—दो तोला जामुनकी गुठलीको ताजे पानीके साथ पीस-छानकर, चार-पाँच दिन सुबह एक गिलास पीनेसे खूनी दस्त बन्द हो जाता है। इसमें चीनी या कोई अन्य पदार्थ नहीं मिलाना चाहिये।

२०. जुकाम—एक पाव गायका दूध गरम करके उसमें बारह दाना काली मिर्च एवं एक तोला मिसरी—इन दोनोंको पीसकर दूधमें मिलाकर सोते समय रातको पी ले। पाँच दिनमें जुकाम बिलकुल ठीक हो जायगा अथवा एक तोला मिसरी एवं आठ दाना काली मिर्च ताजे पानीके साथ पीसकर गरम करके चायकी तरह पीये और पाँच दिनतक स्नान न करे।

२१. मन्दाग्नि—अदरकके छोटे-छोटे टुकड़े करके नीबूके रसमें डालकर और नाममात्रका सेंधा नमक मिलाकर शीशेके बरतनमें रख दे। पाँच-सात टुकड़े नित्य भोजनके साथ सेवन करे। मन्दाग्नि दूर हो जायगी।

२२. उदर-विकार—अजवाइन, काली मिर्च एवं सेंधा नमक—इन तीनोंको एकमें ही मिलाकर चूर्ण बना ले। ये तीनों बराबर मात्रामें होने चाहिये। इस चूर्णको प्रतिदिन नियमितरूपसे रातको सोते समय गरम जलके साथ सेवन करनेसे (मात्रा अठन्नीभर) सभी प्रकारके उदर-रोग दूर हो जाते हैं।

२३. मोटापा दूर करना—एक नीबूका रस एक गिलास जलमें मिलाकर प्रतिदिन खालीपेट पीनेसे मोटापा दूर हो जाता है। ऐसा तीन महीनेतक निरन्तर करना चाहिये। गरमी एवं बरसातके दिनोंमें यह प्रयोग विशेष लाभदायक होता है।

२४. ओठ फटना—

(क) नाभि एवं ओठपर मक्खन तथा नमक मिलाकर लगानेसे ओठोंका फटना बन्द हो जाता है।

(ख) बेरके पत्ते एवं सीताफलके बीज जलके साथ बारीक पीसकर बालोंकी जड़ोंमें लगानेसे बाल शीघ्र बढ़ने लगते हैं।

२५. भूलनेकी बीमारी—

(क) पाँच बादाम एवं ग्यारह दाने काली मिर्च पीसकर नाममात्र चीनी मिलाकर आधा गिलास जल एवं एक कप दूध (गाय या भैंस)-के साथ प्रतिदिन सुबह पीनेसे भूल जानेकी बीमारी दूर हो जाती है।

(ख) बासी मुँह सुबह, शामका रखा हुआ ताँबेके पात्रमें पानी पीनेसे स्मरण-शक्तिमें वृद्धि होती है।

२६. बालोंको बढ़ाना—

(क) नीबूके रसमें आँवला बारीक पीसकर बालोंकी जड़ोंमें लगानेसे बाल बहुत ही जल्दी बढ़ते हैं।

(ख) बेरके पत्ते एवं सीताफलके बीज जलके साथ बारीक पीसकर बालोंकी जड़ोंमें लगानेसे बाल शीघ्र बढ़ने लगते हैं।

सन्त-चरित—

दक्षिण भारतके कुछ शैव सन्त

सन्त माणिक्क वाचक

शैव सन्तोंमें अग्रणी माणिक्क वाचक परमात्माकी भक्तिकी जाज्वल्यमान मूर्त्ति थे। डंकेकी चोटपर उन्होंने कहा कि धर्मग्रन्थोंके अनुशीलन, तपश्चर्या, उपवास, कर्मकाण्ड, यज्ञ-याग, तर्कशास्त्र और दर्शनके अध्यात्मग्रन्थोंके अध्ययन, किंबहुना, मनुष्यके किसी भी प्रयत्नसे भगवान्की प्राप्ति असम्भव ही है। प्रभुकी प्राप्तिका एकमात्र मार्ग प्रेममार्ग ही है। यह प्रेम शुद्ध, सात्त्विक और निष्काम होना चाहिये।

मदुराके पास वदावुर ग्राममें एक ब्राह्मणकुलमें आपका जन्म हुआ था। दस वर्षकी अवस्थामें ही इनकी विलक्षण प्रतिभाका प्रकाश फैला और तत्कालीन पाण्ड्यनरेशने आपकी विद्वत्ता और योग्यता देखकर आपको अपना प्रधानमन्त्री बना लिया। अवस्थामें तो आप एक बालक ही थे, परंतु आपकी कुशाग्र बुद्धिसे शासनकार्यमें बड़ी सहायता मिलती रही। आप राजाके दाहिने हाथ थे।

एक बार राजाने आपको कुछ घोड़े खरीदनेके लिये तिरुपेरन्दुराई भेजा। यहीं आपको श्रीगुरुदेवके दर्शन हुए। घोड़े खरीदनेके जो रुपये पासमें थे, उन्हें आपने गुरुदेवके लिये मन्दिर बनवानेमें लगा दिया। यह बात सुनकर राजाने आपको दण्ड दिया तथा राज्यसे बहिष्कृत कर दिया। अब वे अलमस्त होकर अपने बनाये हुए भजन गाते और मन्दिर-मन्दिर घूमा करते। उन्हें राजदण्डकी तनिक भी चिन्ता न थी। शैवोंके प्रमुख दुर्ग चिदम्बरम्में आपने शास्त्रार्थमें बौद्धोंको हराया। आप नटराजकी उपासना करते थे। तामिल देशमें आज भी माणिक्क वाचकके पद बड़े आदर और श्रद्धासे पढ़े-सुने जाते हैं।

सन्त अप्पार

ईसाकी सातवीं शताब्दीमें अप्पारका आविर्भाव हुआ। ये कांचीके पल्लवनरेश महेन्द्र प्रथमके समय विद्यमान थे। ६०० ई० सन्में, दक्षिण आरकाट जिलेके एक छोटे-से गाँवमें एक सम्पन्न वेकाल-परिवारमें आपका जन्म हुआ। बहुत बचपनमें ही आपके माता-पिता स्वर्ग सिधार गये। आपकी बड़ी बहिनने आपको पाला-पोसा। जैन विद्वानोंके संसर्गमें आकर आपने उनके धर्मग्रन्थोंका अनुशीलन किया। एक बार इन्हें भयंकर पीड़ा हुई। बहिनके कहनेपर आप एक शिवमन्दिरमें जाकर प्रभुसे सुन्दर काव्य-गीतोंमें प्रार्थना करने लगे। दर्द तो मिट ही गया। साथ ही आकाशवाणी हुई कि तुम्हारी वाणीमें सरस्वती बसेंगी। बहिनके आदेशानुसार आप शरीरसे प्रभुकी सेवा, मनसे उनका ध्यान और वाणीसे उनका गुणगान करने लगे। आपको पल्लवनरेश जैनधर्ममें दीक्षित करना चाहते थे और न होनेपर आपको नाना प्रकारके कष्ट दिये गये। कहा जाता है कि आपकी गर्दनमें एक भारी पत्थर बाँधकर आपको नदीमें छोड़ दिया गया, परंतु पत्थर जलपर तैरने लगा। प्रह्लादकी भाँति आप अपने धर्मपर अटल रहे।

चिदम्बरम्में सन्त सम्बन्धसे आप मिले। सम्बन्धने आपको अप्पार (पिता) कहकर पुकारा। तबसे ये सभीके लिये 'अप्पार' हो गये। दोनों सन्तोंने साथ ही देशके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें भ्रमण किया। दोनोंमें बड़ी प्रगाढ़ मैत्री हो गयी। तिरुपगलूरमें आपको कांचन और कामिनीके प्रलोभन दिये गये। परंतु अब इन चीजोंके लिये आपके हृदयमें कोई स्थान नहीं था। अन्तिम दिनोंमें ये भगवान्से आतुर प्रार्थना करते थे कि मुझे अपनी गोदमें उठा लो। यह प्रार्थना प्रभुने स्वीकार कर ली। ८१ वर्षके होकर आप परमात्मामें लीन हो गये। बड़ा ही सरल जीवन आपका था। कौपीनमात्र इनकी सम्पत्ति थी। हाथमें एक झाड़ू लिये रहते और मन्दिरोंको बुहारा करते थे। सदैव पाँव-पयादे ही चलते। हृदय प्रभु और जीवमात्रके लिये प्रेमसे लबालब भरा था। आप बालकके समान सरल और सैनिककी भाँति दृढ़-प्रतिज्ञ थे। इनके उनचास हजार पदोंमें अब केवल तीन-सौ-ग्यारह मिलते हैं। इनकी जीवनी और गीतोंसे आज भी हमें अपूर्व

प्रोत्साहन मिलता है।

सन्त सम्बन्ध

सम्बन्धका जन्म लगभग ६३९ ईस्वी सन्‌में हुआ। चार वर्षकी अवस्थामें आपके पिताजी आपको स्नान करानेके लिये एक सरोवरमें ले गये। पास ही एक मन्दिर था। पिता डुबकी मारकर जलके भीतर डूबे कि इन्हें मन्दिरमें माता पार्वती और भगवान् शिवके दिव्य दर्शन हुए। माताने इन्हें एक सोनेके पात्रमें आध्यात्मिक शक्तिसे परिपूर्ण दूध पिलाया। बालकके हृदयमें प्रेरणा जाग उठी। ज्ञानका प्रकाश उद्दीप्त हो उठा। अब आप 'ज्ञानसम्बन्ध' हो गये। अब भी उनके मुँहमें दूध लगा हुआ था। पिताने पूछा कि दूध कहाँसे लगा है? सम्बन्धने आकाशकी ओर इशारा किया और उनके मुखसे गीतकी धारा फूट पड़ी, जिसमें शिव और पार्वतीकी अपार अनुकम्पाका विशद वर्णन था। अब वे गाँव-गाँव घूमकर लोगोंको भगवान्‌का यश सुनाने लगे।

मदुरामें विरोधियोंद्वारा आपकी कुटियामें आग लगायी गयी। परंतु आपका बाल भी बाँका नहीं हुआ। पाण्ड्य-राज्यमें आपने जैनधर्मके स्थानमें शैवधर्मकी पुनः स्थापना की। अब आपकी अवस्था सोलह वर्षकी हो गयी और गुरुजनोंके आग्रहसे आपने विवाह कर लिया। कहते हैं कि विवाहके पूर्व ही अपनी पत्नीके साथ इन्हें कोई देवता किसी सुदूर स्थानको ले गये। इनके जीवन तथा पदोंसे यह स्पष्ट है कि ये प्रभुको पिताके रूपमें पूजते थे। आपकी सुमनोहर कविताओंमें प्रभुके प्रसाद तथा प्रकृतिके रूप-विलासका बहुत सुन्दर वर्णन है। वह नारी-शक्तिके पुजारी थे। शिवके साथ उमाकी महिमा आपके प्रत्येक पदमें वर्णित है। प्रमुख चार शैवाचार्योंमें आप सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

सन्त सुन्दरमूर्ति

सुन्दरमूर्ति सहमार्गके आचार्य थे। सम्बन्धके सौ साल बाद आपका आविर्भाव उसी तामिल प्रान्तमें हुआ, जहाँ सन्त अप्पारका हुआ था। आपके पूर्वपुरुष शिवके पुजारी थे। विवाहके समय इनकी पत्नीको एक वृद्ध ब्राह्मण अपनी दासी प्रमाणित कर छुड़ा ले गया। इस वृद्ध ब्राह्मणके पीछे-पीछे सुन्दर भी लग गये और बादमें मालूम हुआ कि ये तो साक्षात् शिवजी ही थे, जो अपने प्रिय भक्तको विवाहके बन्धनसे छुड़ाकर अपने मार्गमें लाना चाहते थे। प्रभुकी यह इच्छा जानकर सुन्दरने निश्चय कर लिया कि प्रभुकी सेवामें अपना सब कुछ होम देना चाहिये। ऐसा निश्चयकर वह गाँव-गाँव भगवद्गुणगान करते हुए चिदम्बरम् पहुँचे।

ये कभी किसीसे कोई वस्तु माँगते नहीं थे। प्रभु स्वयं इनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करते थे। एक बार एक सम्पन्न व्यक्तिने आपको अपने यहाँ आमन्त्रितकर अपनी दो लड़कियोंको अर्पित कर दिया। सुन्दरने उन्हें अपनी कन्या मानकर स्वीकार कर लिया। मद्रासके उत्तर एक गाँवमें एक कन्या रहती थी, जिसने यह निश्चय कर लिया था कि या तो किसी सन्तसे विवाह करूँगी या आजीवन अविवाहिता ही रहूँगी। भाग्यवश सुन्दरमूर्ति वहाँ आ पहुँचे। प्रभुकी आज्ञासे उस कन्यासे विवाह किया। शर्त यह थी कि उस गाँवकी सीमासे बाहर नहीं जायँगे। एक बार सुन्दरमूर्ति अज्ञानवश गाँवकी सीमासे बाहर चले गये। इस कारण आप अन्धे हो गये। इसके अतिरिक्त इन्हें और भी बहुत-बहुत कष्ट झेलने पड़े। तब इन्होंने प्रभुसे बहुत कातर होकर अपने अपराधोंके लिये प्रार्थना की, क्षमा माँगी और रोये-गिड़गिड़ाये। कांचीमें आपको एक आँख मिल गयी और तिरुवरुमें दूसरी। आपने अड़तीस हजार पद लिखे, जिनमें आज केवल एक सौ प्राप्त हैं। इन पदोंमें भगवान्‌के प्रति इनकी प्रगाढ़ प्रीति और भक्ति प्रकट होता है।

क्षमाशील मीप्पोरुल नायनार

कुछ और शैव सन्तोंके चरित्र बहुत संक्षेपमें यहाँ दिये जायँगे। मीप्पोरुल नायनार नामके एक राजा थे। उनका एक शत्रु शैव-साधुका वेष बनाकर उनके महलमें घुस गया और उनके पेटमें छुरा भोंक दिया। उन्होंने मरते समय अपने आदमियोंसे कहा कि इस अपराधीको ऐसे स्थानमें पहुँचा आओ, जहाँ यह सुरक्षित जीवन-यापन कर सके।

पंचगव्य-चिकित्सा

(श्रीहुकुमचन्दजी सावला)

गाय माँ है, गाय रसायनशाला है, गायका गोमय (गोबर) वनस्पतिका सत्व है, गोमूत्र वनस्पतिका अर्क है। यह सब अपने-आपमें पूर्ण औषधियाँ हैं। जैसे माँ अपने बच्चेका संरक्षण एवं संवर्धन करती है, वैसे ही गोमाता पंचगव्य औषधियोंद्वारा मनुष्यमात्रका रोगोंसे संरक्षण करती हैं। यहाँ पंचगव्य-चिकित्साके कतिपय प्रयोग दिये जा रहे हैं—

❁ दोनों नासाछिद्रोंमें गायके घीकी एक-एक बूँद डालनेसे याददाश्त तेज होती है। बहती हुई नाक रुक जाती है। खर्राटे बन्द हो जाते हैं और क्रोध भी शान्त होता है।

❁ गोदुग्धसे गोदधि अधिक गुणकारी है, उससे भी अधिक गुणकारी गोघृत है। गायका घी खानेसे अच्छावाला कोलेस्ट्रॉल बढ़ता है, जिससे व्यक्ति बुद्धिमान् और स्वस्थ बनता है।

❁ प्रोटीनका मुख्य स्रोत दूध है। कैल्शियमकी भी पूर्ति दूधसे हो जाती है।

❁ देशी गायका दूध और घी खानेसे खराब कोलेस्ट्रॉल नहीं बढ़ता है।

❁ गायका घी खानेसे कभी उत्तेजना नहीं बढ़ती है। ब्रह्मचर्यका तेज बढ़ता है। देहका तेज भी बढ़ता है।

❁ यदि मस्तकमें रक्त जम रहा हो, तो रक्तप्रवाहके लिये गायका थोड़ा गर्म घी नाकमें दो बूँद डालनेसे फायदा मिलता है। यदि रोगी माइग्रेनके दर्दसे बेचैन हो तो गोघृतको नथुनोंमें डालनेसे रोगमें आराम मिलता है।

❁ गायके दूधमें गायका घी मिलाकर, उसमें फिर थोड़ी हरड़ मिलाकर हमेशा शामको सेवन करें। गठिया दूर होगा।

❁ गायके दूधके साथ एक आँवलेका मुरब्बा लेनेसे स्मरण-शक्ति बढ़ती है। भय, चिन्ता दूर होती है।

❁ गायका दूध खजूरके साथ उबालकर पीनेसे स्मरण-शक्ति बढ़ती है और भय तथा चिन्ताका रोग दूर हो जाता है।

❁ कमजोर स्मरण-शक्तिके लिये तथा भय-चिन्ताको दूर करनेके लिये गायके दूधमें एक चम्मच मुलहठीका चूर्ण डालकर पियें।

❁ बदहजमीसे या गैससे सिरमें जो दर्द होता है, उसे दूर करनेके लिये गायका पुराना घी हलका गर्म करके एक-एक बूँद नाकमें डालनेसे ठीक होता है।

❁ पिण्ड खजूरके छोटे-छोटे टुकड़े दूधमें डालकर उबालें। सोनेसे पहले उस दूधको पियें। खजूर खायें। डेढ़ महीनेमें बच्चे या बूढ़ेकी मूत्ररोगपीड़ा दूर हो जायगी।

❁ सोनेसे पहले गायके दूधमें पकाये हुए चार छुहारे खानेसे बहुमूत्ररोगमें आराम मिलता है, जिससे बिस्तरपर पेशाब या बार-बार उठकर जानेसे राहत मिलती है।

❁ गायके गर्म दूधको तुलसीके बीज और गुड़ बराबर मात्रामें मिलाकर लेनेसे पौरुष बढ़ता है।

❁ अनेक प्रकारके नेत्रोंके रोगोंमें आँखोंमें गायके घीको आँजना श्रेष्ठ उपाय है।

❁ कानके रोग या कानसे आवाज आती है तो उसमें गोमूत्र डालनेसे लाभ होता है।

❁ आँखोंसे पानी आता हो या फिर आँखमें जलन सता रही हो तो देशी गायका घी आँखमें लगायें, रोग दूर हो जायगा।

❁ नमक, फिटकरी और गोबरकी राख मिलाकर मंजन करनेसे दाँतोंके सब रोग ठीक हो जाते हैं।

❁ गायके गर्म दूधमें एक चम्मच त्रिफलाचूर्ण मिलाकर सोनेसे पहले पीनेसे कब्ज दूर होता है।

❁ गन्धक, कपूर, आँवला और नीला थोथा गायके घीमें सम मात्रामें मिलाकर लगानेसे खाज-खुजली दूर हो जाती है।

❁ चीनी और इलायचीको गायके दूधकी मलाईमें मिलाकर चाट लेनेसे हिचकी तुरंत बन्द हो जाती है, अन्य दवाकी कोई जरूरत नहीं है।

सुभाषित-त्रिवेणी

भाइयोंमें बँटवारा प्रशंसनीय नहीं

[Division among Brothers Not Appreciable]

विभागं बहवो मोहात् कर्तुमिच्छन्ति नित्यशः।
ततो विभक्तास्त्वन्योन्यं विक्रुध्यन्तेऽर्थमोहिताः॥

बहुतसे मनुष्य मोहवश सदा धनका बँटवारा कर लेनेकी इच्छा रखते हैं। तदनन्तर बँटवारा हो जानेपर धनके मोहमें फँसकर वे एक-दूसरेके विरोधी हो परस्पर क्रोध करने लगते हैं।

Many people blinded by greed, constantly crave the division of property. Yet once the wealth is apportioned, they fall into enmity and resentment, ensnared by the very greed that drove them to divide it.

ततः स्वार्थपरान् मूढान् पृथग्भूतान् स्वकैर्धनैः।
विदित्वा भेदयन्त्येतानमित्रा मित्ररूपिणः॥

वे स्वार्थपरायण मूढ़ मनुष्य अपने धनके साथ जब अलग-अलग हो जाते हैं, तब उनकी यह अवस्था जानकर शत्रु भी मित्ररूपमें आकर मिलते और उनमें भेद डालते रहते हैं।

When these selfish foolish men part ways with their wealth, then knowing their condition even their enemies come in the form of friends and keep creating differences between them.

विदित्वा चापरे भिन्नानन्तरेषु पतन्त्यथ।
भिन्नानामतुलो नाशः क्षिप्रमेव प्रवर्तते॥

दूसरे लोग, उनमें फूट हो गयी है, यह जानकर उनके छिद्र देखा करते हैं एवं छिद्र मिल जानेपर उनमें परस्पर वैर बढ़ानेके लिये स्वयं बीचमें आ पड़ते हैं। इसलिये जो लोग अलग-अलग होकर आपसमें फूट पैदा कर लेते हैं, उनका शीघ्र ही ऐसा विनाश हो जाता है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है।

Others, knowing that there is a split among them, look for flaws in them and when they find them, they intervene to increase the mutual animosity. Therefore, those who separate and create division among themselves, are destroyed very soon.

तस्माद् विभागं भ्रातृणां न प्रशंसन्ति साधवः।
गुरुशास्त्रे निबद्धानामन्योन्येनाभिशङ्किनाम्॥

अतः साधु-पुरुष भाइयोंके बिलगाव या बँटवारेकी प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि इस प्रकार बँट जानेवाले भाई गुरुस्वरूप शास्त्रकी अलंघनीय आज्ञाके अधीन नहीं रह जाते और एक-दूसरेको सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगते हैं।'

Therefore, the wise and saintly men do not praise the separation or division among brothers. When brothers separate in this way, they cease to remain under the sacred authority of the Guru-form of the scriptures and begin to regard one another with doubt and suspicion.

अनार्याचरितं तात परस्वस्पृहणं भृशम्।
स्वसन्तुष्टः स्वधर्मस्थो यः स वै सुखमेधते॥
अव्यापारः परार्थेषु नित्योद्योगः स्वकर्मसु।
रक्षणं समुपात्तानामेतद् वैभवलक्षणम्॥

तात! दूसरेके धनकी स्पृहा रखना नीच पुरुषोंका काम है। जो भलीभाँति अपने धनसे सन्तुष्ट तथा अपने धर्ममें ही स्थित है, वही सुखपूर्वक उन्नतिशील होता है। दूसरेके धनको हड़पनेकी कोई चेष्टा न करना, अपने कर्तव्यको पूरा करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना और अपनेको जो कुछ प्राप्त है, उसकी रक्षा करना—यही उत्तम वैभवका लक्षण है।

Desiring the wealth of others is the work of mean people. Only those who are well satisfied with their own wealth and firmly established in their own Dharma, prosper happily. Not making any attempt to usurp the wealth of others, always striving to fulfill one's duties, and protecting whatever one has received- this is the sign of supreme prosperity.

[महा० १।२१।१८—२१, २।५४।६-७]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८३, शक १९४८ सन् २०२६, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्मऋतु, शुद्ध ज्येष्ठ-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।३ बजेतक	शनि	विशाखा अहोरात्र	२ मई	वृश्चिकराशि रात्रिमें ११।१० बजेसे।
द्वितीया ,, १२।५७ बजेतक	रवि	विशाखा प्रातः ५।४४ बजेतक	३ ,,	× × × ×
तृतीया ,, ३।० बजेतक	सोम	अनुराधा दिनमें ८।१५ बजेतक	४ ,,	भद्रा दिनमें १।५८ बजेसे रात्रिमें ३।० बजेतक। मूल दिनमें ८।१५ बजेसे।
चतुर्थी रात्रिशेष ५।१ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ,, १०।५२ बजेतक	५ ,,	धनुराशि दिनमें १०।५२ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेश-चतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७।२९ बजे।
पंचमी अहोरात्र	बुध	मूल ,, १।२६ बजेतक	६ ,,	मूल दिनमें १।२६ बजेतक।
पंचमी प्रातः ६।५१ बजेतक	गुरु	पू० षा० ,, ३।४६ बजेतक	७ ,,	मकरराशि रात्रिमें १०।१६ बजेतक।
षष्ठी दिनमें ८।२४ बजेतक	शुक्र	उ० षा० सायं ५।४६ बजेतक	८ ,,	भद्रा दिनमें ८।२४ बजेसे रात्रिमें ८।५७ बजेतक।
सप्तमी ,, ९।२८ बजेतक	शनि	श्रवण रात्रिमें ७।१८ बजेतक	९ ,,	× × × ×
अष्टमी ,, १०।६ बजेतक	रवि	धनिष्ठा ,, ८।२१ बजेतक	१० ,,	कुम्भराशि प्रातः ७।५० बजेसे, पंचकारम्भ प्रातः ७।५० बजे।
नवमी ,, १०।१२ बजेतक	सोम	शतभिषा ,, ८।५५ बजेतक	११ ,,	भद्रा रात्रिमें १०।१ बजेसे, कृत्तिकाका सूर्य रात्रिमें १०।५८ बजे।
दशमी ,, ९।४७ बजेतक	मंगल	पू० भा० ,, ८।५९ बजेतक	१२ ,,	भद्रा दिनमें ९।४७ बजेतक, मीनराशि दिनमें २।५८ बजेसे।
एकादशी ,, ८।५३ बजेतक	बुध	उ० भा० ,, ८।३५ बजेतक	१३ ,,	अचला एकादशीव्रत सबका, मूल रात्रिमें ८।३५ बजेसे।
द्वादशी ,, ७।३३ बजेतक	गुरु	रेवती रात्रिमें ७।४९ बजेतक	१४ ,,	मेषराशि दिनमें ७।३३ बजेसे, प्रदोषव्रत, पंचक समाप्त रात्रि ७।४९ बजे।
त्रयोदशी प्रातः ५।५२ बजेतक	शुक्र	अश्विनी ,, ६।४३ बजेतक	१५ ,,	भद्रा प्रातः ५।५२ बजेसे सायं ४।५२ बजेतक, मूल रात्रिमें ६।४३ बजेतक, वृषसंक्रान्ति दिनमें १०।६ बजे, ग्रीष्मऋतु प्रारम्भ।
अमावस्या रात्रिमें १।३७ बजेतक	शनि	भरणी सायं ५।५० बजेतक	१६ ,,	वृषराशि रात्रिमें १०।५८ बजेसे, अमावस्या, वटसावित्री व्रत।

सं० २०८३ शक १९४८, सन् २०२६, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, अधिक ज्येष्ठ-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।१४ बजेतक	रवि	कृत्तिका दिनमें ३।४८ बजेतक	१७ मई	अधिकमास प्रारम्भ।
द्वितीया ,, ८।४६ बजेतक	सोम	रोहिणी ,, २।९ बजेतक	१८ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें १।१९ बजेसे।
तृतीया सायं ६।१९ बजेतक	मंगल	मृगशिरा ,, १२।२९ बजेतक	१९ ,,	भद्रा रात्रिशेष ५।९ बजेसे।
चतुर्थी दिनमें ३।५६ बजेतक	बुध	आर्द्रा ,, १०।५२ बजेतक	२० ,,	भद्रा दिनमें ३।५६ बजेतक, कर्कराशि रात्रिमें ३।४८ बजेसे, वैनायकी श्री गणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी ,, १।४५ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु ,, ९।२६ बजेतक	२१ ,,	सायन मिथुनराशि का सूर्य दिनमें १०।० बजे।
षष्ठी ,, ११।४६ बजेतक	शुक्र	पुष्य ,, ८।१२ बजेतक	२२ ,,	मूल दिनमें ८।१२ बजेसे।
सप्तमी ,, १०।८ बजेतक	शनि	आश्लेषा प्रातः ७।१८ बजेतक	२३ ,,	भद्रा दिनमें १०।८ बजेसे रात्रिमें ९।३० बजेतक, सिंहराशि प्रातः ७।१८ बजेसे।
अष्टमी ,, ८।५२ बजेतक	रवि	मघा ,, ६।४३ बजेतक	२४ ,,	मूल प्रातः ६।४३ बजेतक।
नवमी ,, ८।१ बजेतक	सोम	पू०फा० ,, ६।३४ बजेतक	२५ ,,	कन्याराशि दिनमें १२।४० बजेसे, रोहिणीका सूर्य रात्रिमें ८।२१ बजे।
दशमी ,, ७।४० बजेतक	मंगल	उ०फा० ,, ६।५५ बजेतक	२६ ,,	भद्रा रात्रिमें ७।४५ बजेसे, प्रातः ६।५५ बजेसे श्रीगंगादशहरा।
एकादशी ,, ७।४९ बजेतक	बुध	हस्त दिनमें ७।४५ बजेतक	२७ ,,	भद्रा दिनमें ७।४९ बजेतक, तुलाराशि रात्रिमें ८।२६ बजेसे, पुरुषोत्तमी एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी दिनमें ८।३१ बजेतक	गुरु	चित्रा ,, ९।६ बजेतक	२८ ,,	प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, ९।३८ बजेतक	शुक्र	स्वाती ,, १०।५५ बजेतक	२९ ,,	× × × ×
चतुर्दशी ,, ११।११ बजेतक	शनि	विशाखा ,, १।६ बजेतक	३० ,,	भद्रा दिनमें ११।११ बजेसे रात्रिमें १२।७ बजेतक, वृश्चिकराशि प्रातः ६।३४ बजेसे, व्रतपूर्णिमा।
पूर्णिमा ,, १।२ बजेतक	रवि	अनुराधा ,, ३।३५ बजेतक	३१ ,,	पूर्णिमा, मूल दिनमें ३।३५ बजेसे।

कृपानुभूति

कृष्ण नामका चमत्कार

कुछ दिन पहलेकी बात है। धीमी-धीमी ठण्डी हवा चल रही थी। मैं एक्टिवाको धीरे-धीरे चलाकर ठण्डी हवाका आनन्द लेते हुए मन-ही-मन कृष्ण नामका जप करते हुए राँचीके राम-मन्दिरसे श्याम-मन्दिर जा रही थी।

कुछ समय पश्चात् मुझे मुड़ना था। इण्डिकेटर ऑन किया। लेकिन इण्डिकेटर काम नहीं कर रहा था। थोड़ा आगे बढ़नेके बाद मेरे सामने एक कुत्ता आ गया। जैसे ही ब्रेक लगाने लगी, ब्रेक भी काम नहीं कर रहा था। सोचने लगी—'हे कान्हा! यह क्या हो गया? गाड़ी तो अभी ठीक थी। जैसे-तैसे मैं श्याम-मन्दिर पहुँच गयी। श्याम-मन्दिर पहुँचकर एक्टिवाको साइडमें लगाकर लॉक करने लगी, तो लॉक भी नहीं लग रहा था। मैंने बहुत कोशिश की, लेकिन चाभी घूम ही नहीं रही थी।

तभी मेरी नजर एक श्याम भक्तपर पड़ी। उन्हें मैंने अपनी समस्या बतायी। आग्रह किया कि एक बार वे भी कोशिश करें। उन भैयाने बहुत कोशिश की, लेकिन लॉक नहीं लगा। मैं बहुत परेशान हो गयी। मन-ही-मनमें कहने लगी—'हे कान्हा! यह क्या हो गया?'

तभी एक्टिवाके सामने मेरी नजर गयी, तो हैरान हो गयी। क्योंकि मेरी एक्टिवामें 'जय श्रीकृष्ण' लिखा हुआ है, और इस एक्टिवामें नहीं लिखा था। 'हे कृष्ण! मैं किसी दूसरे भक्तकी एक्टिवा लेकर आ गयी।' तभी मैंने श्याम भक्तसे कहा कि 'भैया! पता नहीं यह किसकी एक्टिवा है। यह मेरी नहीं है। उन्होंने पूछा, 'आप अभी कहाँसे आयी हैं।' मैंने कहा—राम-मन्दिरसे। भैयाने कहा कि आप हमारे साथ राम-मन्दिर चलिये, वहीं पता लगेगा।

हम भैयाके साथ राम-मन्दिर पहुँचे। देखा कि मेरी एक्टिवा वहींपर है। वहाँ कुछ भक्त पहलेसे ही उपस्थित थे। मुसकुराते हुए कह रहे थे। आप दूसरी एक्टिवा लेकर चली गयीं। हमने आवाज भी लगायी, लेकिन आप अपनी ही धुनमें थीं।

जिनकी एक्टिवा थी, वे सज्जन मन्दिरसे बाहर आये। उन्होंने कहा कि 'भाभीजी! हम आपको जानते हैं। हम आपसे थोड़ी ही दूरपर रहते हैं। पण्डितजी आपको फोन लगा रहे थे। लेकिन आपने फोन रिसीव नहीं किया।' मैंने देखा कि बैगमें मोबाइल नहीं है। मैंने कहा कि आज मैं मोबाइल लाना भूल गयी।

मैंने अपनी भूलके लिये उनसे क्षमा माँगी, और जो भक्त राम-मन्दिर हमारे साथ आये थे, उन्हें धन्यवाद दिया और अपनी एक्टिवा लेकर घर आ गयी।

रास्तेमें सोचने लगी, न ही मेरी एक्टिवा थी, न ही इण्डिकेटर काम कर रहा था, न ही ब्रेक, न एक्टिवा लॉक हुई और न ही मेरे पास मोबाइल था। इस समय हाईवेपर स्कूलकी बस बहुत तेज गतिसे चलती है। ऐसी परिस्थितिमें न जाने क्या कुछ हो जाता! पता नहीं, ऐसी कौन-सी दिव्य शक्तिने मेरी रक्षा की; क्योंकि जिस समय मेरा ब्रेक काम नहीं कर रहा था, उस समय सड़कमें दूर-दूरतक कोई वाहन या ट्रक नहीं था।

इसी ताना-बानामें याद आया, कुछ दिन पहले एक सज्जन व्यक्तिसे मुलाकात हुई थी। उन्हें शास्त्रोंका अच्छा ज्ञान था। बातों-ही-बातोंमें मैंने उनसे कहा था कि कैसे हम भगवान्की आराधना करें? उन्होंने कहा कि आप सिर्फ श्रीकृष्ण-नामका जाप करिये। आपके जीवनमें बहुत चमत्कार होने लग जायँगे। आपको अपने-आप शास्त्रोंका ज्ञान होने लग जायगा। उन सज्जनकी बातोंको ध्यानमें रखकर, हम कृष्ण-नामका जप करने लग गये थे। कृष्णने कैसा अद्‌भुत चमत्कार किया। न कोई बस, न ट्रक, न कोई व्यक्ति और कृष्ण मेरे रक्षा-कवच बनकर मेरे साथ थे। ऐसा लग रहा था कि जो राम-मन्दिरके पासमें खड़े भक्त मुसकुरा रहे थे, वह श्रीकृष्णका ही स्वरूप थे। जिन्होंने श्याम-मन्दिरके पास मेरी सहायता की, वे भी श्रीकृष्णका ही एक रूप थे।

यही सोच-सोचके आकाशमें स्थित सूर्यदेवताको आँखोंसे नमन करते हुए कब मेरी आँखोंसे पानी छलक आया, पता ही नहीं चला। धन्य है प्रभु तेरी लीला! ***हे माधव! मेरी जिन्दगीकी हर किताबमें हर अध्याय तुम्हारा है! कहानी तो मेरी है पर हर पन्नेपर नाम तुम्हारा है!!*** [श्रीमती अनीताजी साबू]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

माता-पिताकी सेवाका फल

यह सत्य घटना, वर्ष १९७२ ई० की है, मैंने इलाहाबाद विश्वविद्यालयसे एम.एस-सी. की परीक्षा अच्छे अंकोंसे उत्तीर्ण की। उस समय जैसा प्रचलन था, प्रतिष्ठित विदेशी विश्वविद्यालयोंमें मैंने अनुसन्धान-कार्यहेतु आवेदन किया एवं विभिन्न प्रतियोगिताओंमें भाग लेनेहेतु अध्ययन प्रारम्भ किया।

परंतु दुर्भाग्यसे उसी समय मेरे माता-पिता बहुत रुग्ण हो गये और उनकी सेवामें मुझे अधिक समय देना आवश्यक था। चिकित्सालयों एवं विभिन्न परीक्षण आदिमें तथा रात्रिमें उनकी सेवामें देरतक उनके साथ उपस्थित रहना पड़ता था। जिसको लेकर मेरे माता-पिता बहुत चिन्तित एवं दुखी रहते थे। अन्दर-ही-अन्दर उनको बहुत ग्लानि भी हो रही थी कि उनके खराब स्वास्थ्यके कारण उनके पुत्रको अपने आगेके जीवनहेतु वांछित प्रयास करनेका अवसर नहीं मिल रहा है। समय-समयपर अपनी पीड़ा उन्होंने व्यक्त भी की। वे कहते रहते थे कि हमारी बीमारी एवं वृद्धावस्थाके कारण हम तुम्हारे भविष्यको सँवारनेकी जगह उसको बिगाड़ रहे हैं।

माता-पिताकी ये बातें सुनकर मैं उन्हें आश्वस्त करता कि माता-पिताकी सेवा करना पुत्रके लिये अहोभाग्य है। आपकी सेवासे बढ़कर महान् मेरा कोई कर्तव्य और धर्म नहीं हो सकता है।

इसी समय देशकी सबसे कठिन परीक्षाका समय आया। समय भी कम था, अच्छी तैयारी हो नहीं पायी। जो विद्यार्थी एक या दो वर्षसे अध्ययनरत थे एवं सम्बन्धित विषय निरन्तर पढ़कर उत्कृष्ट तैयारी कर चुके थे और मुझे भी समय निकालकर पढ़ाते थे, उनसे जब स्वाध्यायके दौरान चर्चा हुई, तो उन्होंने कहा कि विक्रम! तुम्हारी तैयारी बिलकुल नहीं है, तुम परीक्षा मत दो, यह सब सुनकर मेरा मन बड़ा दुखी हुआ।

प्रयागराजका निवासी होनेके कारण संगम जाना, वहाँपर कुम्भके दौरान देवरहा बाबाका दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करना, संगमतटपर लेटे श्रीहनुमान्‌जीका दर्शन करना—ये सभी कार्य मेरी दिनचर्याका भाग बन गये थे। श्रीहनुमान्‌जीके दर्शनके समय मुझे यह प्रेरणा हुई कि माता-पिताकी और अधिक तन, मन, धन और निष्ठाके साथ सेवा करो, उसीमें कल्याण है।

बस, फिर क्या था, सेवा तो पहले भी करता था परंतु अब देर राततक सरमें तेल मालिश करना, पैर दबाना—यह क्रम भी शुरू हो गया। मुझे इस प्रकारसे सेवा करते देखकर माता-पिताके तो जैसे अश्रुपात रुकते ही नहीं थे और वे स्नेहवश कहते थे कि तुम वास्तवमें हमारे परिवारके श्रवणकुमार हो।

सामूहिक अध्ययन करनेवाले छात्रों एवं शिक्षकोंके परामर्शके विपरीत कि 'मैं परीक्षा न दूँ', मैंने कुछ ही महीनोंकी तैयारीके उपरान्त श्रीहनुमान्‌जीका नाम लेकर परीक्षा दे डाली। एक परीक्षामें जाते समय तो इतनी घनघोर वर्षा हुई कि मैं पूरी तरहसे भीग गया और परीक्षा-कक्षमें बड़ी कठिनाईसे समयसे उपस्थित हो पाया। परीक्षा-कक्षकी परम दयालु परीक्षा-निरीक्षिकाको भी मेरे ऊपर बहुत दया आयी और देवीस्वरूपा अधिकारीने कहींसे एक छोटा तौलिया लाकर मुझे दिया और बड़े स्नेहसे कहा—'बेटा! इससे सिर पोंछ लो और भगवान्‌का नाम लेकर परीक्षा दो।'

श्रीहनुमान्‌जीको नमन करते हुए परम पूज्य माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम करते हुए मैंने परीक्षा पूरी की। एक विचित्र घटना यह हुई कि पता नहीं कि कुछ अदृश्य शक्तियोंके प्रसादसे एक अभूतपूर्व एकाग्रता तथा चिन्तनका सामर्थ्य प्राप्त हुआ। मुझे स्वयं विश्वास नहीं हो रहा था कि यह उत्तर मैंने लिखा है, ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मेरी लेखनी किसी और ऊर्जा एवं शक्तिसे चल रही है।

परिणामके बारेमें मुझे अपने-आपसे कोई अपेक्षा

नहीं थी; क्योंकि मेरी कोई तैयारी तो थी नहीं, मैंने तो सहपाठियों एवं शिक्षकोंके मना करनेके बावजूद विपरीत परिस्थितियोंमें परीक्षा दी थी।

परंतु श्रीहनुमान्‌जी और माता-पिताका ऐसा आशीर्वाद प्राप्त हुआ, जिसकी मैं कभी कल्पना नहीं कर सकता था। चमत्कार यह हुआ कि जो मुझसे कहीं ज्यादा कठोर परिश्रमी, अनुभवी एवं कुशाग्र परीक्षार्थी थे, उनका चयन न हो पाया और मेरे जैसा अनुपयुक्त एवं अनुभवविहीन परीक्षार्थी, बहुत ही अच्छे अंकोंसे उत्तीर्ण हुआ। यही क्रम साक्षात्कारसे लेकर पूरे सेवाकालमें रहा।

यह मेरे जीवनका प्रत्यक्ष अनुभव है कि श्रीहनुमान्‌जीका पूजन एवं माता-पिताका पुण्य प्रसाद कभी निष्फल नहीं जाता है। विषमसे विषम परिस्थितियोंमें भक्त और सन्तानकी ऐसी रक्षा होती है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। **श्रीहनुमते नमः।**

[डॉ० श्रीविक्रमसिंहजी, पूर्व पुलिस महानिदेशक, उ०प्र०]

(२)

गुजराती भाई-बहनोंकी परोपकारिता

बात, सन् २००१-०२ के आस-पासकी है। हम लोग ग्राम-पीपलरावाँ, जिला-देवास (म०प्र०)-से गुजरात प्रान्तमें देवदर्शनहेतु गये थे। हमारी यह यात्रा जीपद्वारा हुई थी।

श्रीद्वारकाधीश, बेट द्वारका, पुरानी द्वारकाके दर्शन करनेके पश्चात् सौराष्ट्रमें श्रीसोमनाथ, भालकातीर्थ, पावागढ़ आदि स्थानोंका दर्शन करनेके पश्चात् जूनागढ़ गया, जो भक्त नृसिंह मेहताजीकी नगरी तो है ही, वहीं श्रीगिरनारपर्वतकी छाया भी निराली है। उस नगरमें १२ बजे दिनमें ऐसा प्रतीत होता है कि अब सूर्योदय हो रहा है। श्रीसूर्यभगवान् गिरनार महाराजके आड़में आते हैं। प्रातः हमलोग गिरनारपर्वतकी ओर बढ़े, जहाँ ११००० सीढ़ी चढ़नेपर श्रीगोरखनाथजीकी तपस्यास्थलीके दर्शन होते हैं। हम तीन-चार लोग लगभग २००-३०० सीढ़ियाँ चढ़नेके बाद थक गये। अतः हम वहाँतक नहीं जा सके, बाकी लोगोंने दर्शन किया।

जूनागढ़में जब हम लोगोंने श्रीभक्त नृसिंहजी मेहताका मकान दो-तीन लोगोंसे पूछा तो वे बिना उत्तर दिये चले गये। इतनेमें एक बहनजी आयीं, उन्होंने बताया, यहाँ मकान पूछोगे तो कोई नहीं बतायेगा। यहाँ मकानको 'चोरा' कहते हैं और उन बहनने हमलोगोंको वहाँका दर्शन करा दिया।

शामके लगभग चार बज रहे थे, हम जूनागढ़से जैसे ही थोड़ा बढ़े, तो विघ्न-बाधाओंके संकेत आने लगे। एक बिल्ली रास्ता काट गयी। मैंने कहा थोड़ी देर रुक जाओ, तो सभी मेरा मजाक उड़ाने लगे, अरे! इससे क्या होता है। मैंने भगवत्स्मरण किया और कोई वाद-प्रतिवाद न कर शान्त रहा। इतनेमें ड्राइवरने कहा—अब चलो, अनजान स्थानपर ज्यादा समय रुकना ठीक नहीं। बस, फिर क्या था, हमलोग चल दिये, परंतु गाड़ी लगभग १०-१५ किलोमीटर चलनेके बाद खराब हो गयी।

इंजन घर्र-घर्र-घर्र करने लगा। ड्राइवरने कहा, 'गाड़ीमें पेट्रोल कम है, इससे गाड़ी स्टार्ट नहीं हो पा रही है। वापस जूनागढ़ जाकर पेट्रोल लाना पड़ेगा।' जूनागढ़से पेट्रोल लाकर डालनेपर भी गाड़ी स्टार्ट नहीं हुई। हम सभी लोग असमंजसकी स्थितिमें गाड़ीके आस-पास बैठ गये।

अब ड्राइवरने बताया कि एक पुर्जा जूनागढ़से लाना पड़ेगा, तब गाड़ी स्टार्ट होगी। शाम लगभग ६ बजेका समय होनेको आया था। वहाँ तब बुलेट रिक्शे चलते थे। इतनेमें एक भाईसाहब जूनागढ़की तरफसे बुलेटपर आ रहे थे। हमलोगोंने उनको हाथका इशारा किया तो वे रुक गये। बोले—'क्या बात है? तुम लोग डाकू तो नहीं हो?' तो ड्राइवरने अनुनय-विनयके स्वरमें कहा, 'हमारी गाड़ी खराब हो गयी है। मैं बहुत देरसे परेशान हो रहा हूँ। एक पुर्जा जूनागढ़ जाकर लाना पड़ेगा, तब गाड़ी स्टार्ट होगी। हमें जानेका साधन नहीं मिल रहा है। हम लोगोंने उनसे कहा कि साहब! हम सब सीधे-सच्चे एवं सात्त्विक प्राणी हैं। साथ ही हममेंसे कुछ शासकीय कर्मचारी हैं। और कुछ लोगोंका एकादशीका उपवास भी है।

हमारे ऐसा कहनेपर वे गुजराती भाई तुरंत हमारे

ड्राइवरको लेकर जूनागढ़ जानेको तैयार हो गये। जहाँ हमारी गाड़ी खराब हुई थी, वहाँ एक छोटा-सा ग्राम था, जो हाईवेके आस-पास बसा हुआ था। जूनागढ़ गये उन लोगोंको लगभग एक घण्टा हो गया था। इधर हमारे पास पीनेका पानी समाप्त हो गया था। जोरकी प्यास लगनेपर मैं तीन-चार बोतल लेकर दो लोगोंके साथ एक मकानपर गया और आवाज लगायी। एक बहनजीने दरवाजा खोला और पूछा—'क्या बात है?' हमलोगोंके सारी व्यथा बतानेपर, उन बहनजीको हमारे ऊपर बहुत दया आयी। उन्होंने कहा 'पानी जितना चाहिये ले जाओ और मैं आपके लिये भोजन बनाती हूँ।' हमने कहा नहीं, बहनजी! हमलोग जूनागढ़से जीमकर आये हैं और कुछ लोगोंकी आज एकादशी है। बस, पानी चाहिये था। उन्होंने कहा—जितनी जरूरत हो, ले जाइयेगा।

हम गाड़ीके पास आये, इतनेमें ड्राइवर और भाई साहब आ गये, किंतु बहुत प्रयासके बाद भी गाड़ी स्टार्ट नहीं हुई। ड्राइवरने कहा एक और पुर्जा लाना पड़ेगा, तब गाड़ी चालू होगी। वे भाई साहब पुनः ड्राइवरको लेकर जूनागढ़ गये। एक घण्टे बाद एक पुर्जा लेकर आये। ड्राइवरने उस पुर्जेको लगाया और गाड़ी स्टार्ट करनेकी कोशिश की तो अबकी बार श्रीरामजीकी कृपासे गाड़ी स्टार्ट हो गयी। लगभग ४-५ घण्टेकी मेहनतके बाद गाड़ी चालू हो जानेपर सभीके चेहरेपर हँसी आयी।

इस बीचमें गुजराती भाई गाड़ी चालू होनेतक वहाँ खड़े रहे। इतना ही नहीं, वे लगभग दो किलो मिठाई भी हम लोगोंके लिये लाये थे, हमें दी और कहा—आज एकादशी है, आप ग्रहण करो। इतना कहकर जब वे जाने लगे तो हमने कुछ पैसे उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा—भाई साहब! आप दो बार जूनागढ़ गये हो, यह पेट्रोलके पैसे रख लो।

बहुत कहनेपर भी उन्होंने पैसे नहीं लिये, कहा 'आप हमारे मेहमान हो और कहा भाइयो! मैं एक छोटी-सी फैक्ट्रीका मालिक हूँ। ५.३० बजे शामसे घरपर मेरी प्रतीक्षा हो रही है।' यह सुनकर हमारी आँखें नम हो गयीं कि गुजराती भाई-बहन कितने परोपकारी होते हैं। 'पुनः पधारियेगा' कहकर वे भाई साहब 'जय श्रीकृष्ण' कहते हुए अपने गन्तव्यकी ओर चले गये।

जब-जब यह घटना स्मरणमें आती है, हृदय आनन्द, कृतज्ञता और श्रद्धासे भर उठता है। अनजान जगहपर उन गुजराती भाई और उस बहनने हमारे साथ जो सद्व्यवहार किया, वह मानवताका गौरव है। [श्रीशिवनारायणजी शर्मा]

(३)

धोबिन बहिनकी ईमानदारी

बात सन् २०१० ई० के मई महीनेकी है। मैं सपरिवार दिल्लीसे रामपुरडीह (भागलपुर) गया था। शामको लगभग ४ बजे गाँवमें लगनेवाले हाटसे कुछ घरेलू सामान लाने मैं बाहर चला गया। इसी बीच मेरी पत्नीने सभी गन्दे कपड़े धोबिनको धुलनेके लिये दे दिये, जो पासके गाँव दासपुरसे आती थी। जब मैं घर लौटा तो इस बातका मुझे पता चला; मैंने अपनी पत्नीसे कहा कि मेरी कमीजमें २२०० रुपये थे, यह सुनकर वह अवाक् रह गयी। मैं उलटे पाँव धोबिनके घरकी ओर चला गया। वहाँ उसके घरके दरवाजेपर एक बच्ची मिली, मैंने उससे पूछा कि तुम्हारी माँ कहाँ है? उसने कहा—'अभी तो आयी थी, कहीं चली गयी।' मैं कुछ देर वहाँ रुका, फिर लौट आया। घर लौटनेपर पता चला कि धोबिनने पैसे लौटा दिये हैं। उसको मिठाई खानेके लिये १०० रुपये दिये जानेपर उसने रुपये लेनेसे इनकार कर दिया। गरीबीमें भी उसने जो 'ईमानदारी'की अनोखी मिसाल कायम की, वह आजके युगमें आश्चर्य ही है। [श्रीरमाकान्तजी झा]

मनन करने योग्य

'धन है धूलि समान'

'आप घर तो नहीं भूल गये हैं? मैं इस सम्मानका पात्र नहीं हूँ।'

'भूले नहीं हैं, निश्चय ही हम आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं।'

'मेरी सेवा? मैं तो पामर प्राणी हूँ। सेवा तो विट्ठल भगवान्‌की करनी चाहिये भाई!'

'आप जगदीश्वरके परम भक्त हैं, यह सुनकर महाराजा छत्रपति शिवाजीने आपका स्वागत करनेके लिये ये हाथी, घोड़े, पालकी और सेवकगण भेजे हैं। आप हमारे साथ पधारनेकी कृपा करें।'

भक्तराज तुकाराम हँस पड़े—'अरे भाई! यदि मुझे जाना ही होगा, तो ईश्वरके दिये हुए पैर तो मौजूद हैं। फिर इस आडम्बरकी क्या जरूरत?'

गाँवके लोगोंको हँसी उड़ानेका अवसर मिला—'वाह, अब तुका भगत भक्ति छोड़कर राजदरबारमें विराजेंगे।'

सन्त तुकाराम नम्रतापूर्वक कहने लगे—'आप छत्रपतिको मेरा सन्देश कह दें कि मेरा आपको सदा-सर्वदा आशीर्वाद है। कृपा करके मुझे मेरे विट्ठल भगवान्‌की सेवासे विमुख न करें। मैं जहाँ और जैसे हूँ, वहाँ वैसे ही ठीक हूँ। मेरी यह कुटिया ही मेरा राजमहल है और यह छोटा-सा मन्दिर ही मेरे प्रभुका राजदरबार है। वैभवकी वासनाको जगाकर मुझे इस भक्ति-मार्गसे विचलित न करें। मेरे विठोबा उनका कल्याण करें।'

इकट्ठे हुए गाँववाले फिर हँस पड़े—'कैसे गँवार हैं तुका भगत! सामने आये हुए राज-वैभवको ठुकराते हैं, घर आयी लक्ष्मीको धक्का मारते हैं।'

× × ×

छत्रपति शिवाजीने जब तुकारामकी अटल निःस्पृहताकी बात सुनी, तब वे ऐसे सच्चे सन्तके दर्शनके लिये अधीर हो उठे और स्वयं तुकारामके पास जा पहुँचे।

देहू गाँवकी जनताको आज और आश्चर्यका अनुभव हुआ। देहू-जैसे छोटे-से गाँवमें छत्रपति शिवाजी महाराजका शुभागमन! जय-घोषणासे दिशाएँ गूँज उठीं।—'छत्रपति शिवाजी महाराजकी जय!'

तुकारामको देखते ही शिवाजी उनके चरणोंमें लोट गये।

'हँ, हँ छत्रपति! राजाको ईश्वररूप माना जाता है। आप तो पूजनीय हो।' तुकारामने शिवाजीको उठाया और प्रेमसे हृदयसे लगा लिया।

'आज आप-जैसे सन्तके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया। मेरी प्रार्थना है कि मेरी इस अल्प सेवाको आप स्वीकार करें।'

राजाने स्वर्ण-मुद्राओंसे भरी थैली तुकारामके चरणोंमें रख दी।

'यह आप क्या कर रहे हैं महाराज? भक्तिमें बाधा डालनेवाली मायामें मुझे क्यों फँसाते हैं? मुझे धन नहीं चाहिये। मुझे जो कुछ चाहिये, वह मेरे विट्ठल प्रभुकी कृपासे अनायास मिल जाता है। जब भूख लगती है, तब भिक्षा माँग लाता हूँ। रास्तेमें पड़े चिथड़ोंसे शरीरको ढँक लेता हूँ। कहीं भी सोकर नींद ले लेता हूँ। फिर मुझे किस बातकी कमी है। मैं तो मेरे विठोबाकी सेवामें परम सुख-सर्वस्वका अनुभव कर रहा हूँ। महाराज! आप इस धनको वापस ले जाइये। प्रभु आपका कल्याण करें।'

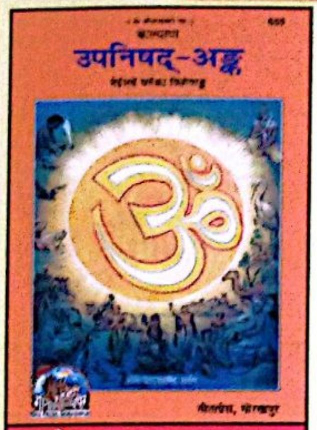
शिवाजी चकित हुए। वे बोल उठे—'धन्य हो भक्तशिरोमणि! ऐसी अनुपम निःस्पृहता और निर्भयता मैंने कभी नहीं देखी। आपको मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।'

'धन है धूलि समान' इस सूत्रको ज्ञानपूर्वक आचरणमें लानेवाले इस अद्भुत सन्तकी चरण-धूलि मस्तकपर चढ़ाकर उसको वन्दन करते हुए शिवाजी वापस लौट गये।

इधर भक्तराज तुकारामने प्रभुसे प्रार्थना की—'ऐसी माया कभी फिर न दिखाना मेरे प्रभु!'

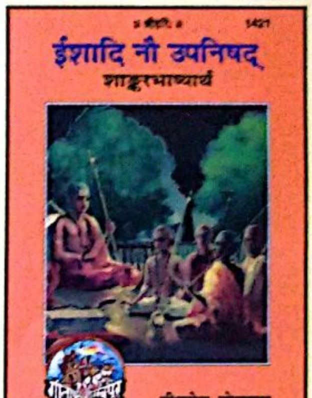
[श्रीताराचन्द्रजी अडालजा]

गीताप्रेससे प्रकाशित उपलब्ध—उपनिषद् साहित्य



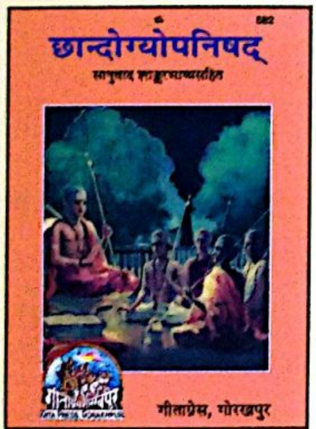
कोड 659 मू० ₹ 300

उपनिषद्-अङ्क (कोड 659)—इसमें नौ प्रमुख उपनिषदों-(ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतर-) का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित संकलन किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें 45 उपनिषदोंका महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर टिप्पणीके साथ प्रायः सभीका हिन्दी-अनुवाद दिया गया है। **मूल्य ₹300 डाकखर्च एवं पैंकिग खर्च ₹70 अतिरिक्त।**



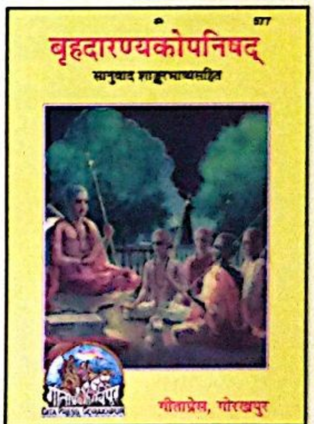
कोड 1421 मू० ₹ 280

ईशादि नौ उपनिषद् (कोड 1421)—शाङ्करभाष्य और भाष्यार्थके साथ अलग-अलग पुस्तकरूपमें पूर्वप्रकाशित ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय तथा श्वेताश्वतर उपनिषद्को इस पुस्तकमें पाठकोंके सुविधार्थ एक साथ प्रकाशित किया गया है। सजिल्द, **मूल्य ₹280, डाक एवं पैकिंगखर्च ₹70 अतिरिक्त।**



कोड 582 मू० ₹ 170

छान्दोग्योपनिषद् (कोड 582)—सामवेदीय तलवकार ब्राह्मणके अन्तर्गत वर्णित इस उपनिषद्में क्रमबद्ध और युक्तिपूर्ण ढंगसे कर्म तथा ज्ञानका सजीव वर्णन है। तत्त्वज्ञान और उपासनाकी इसमें विस्तृत चर्चा है। शाङ्करभाष्य, सानुवाद, **मूल्य ₹170 डाक एवं पैकिंगखर्च ₹70 अतिरिक्त।**



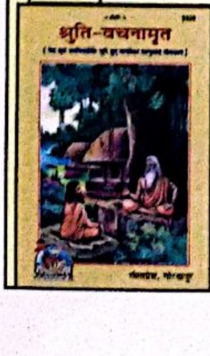
कोड 577 मू० ₹ 280

बृहदारण्यकोपनिषद् (कोड 577)—यजुर्वेदके काण्वी शाखामें वर्णित यह उपनिषद् कलेवरकी दृष्टिसे बृहत् तथा वनमें अध्ययन किये जानेके कारण आरण्यक कहलाता है। शाङ्करभाष्य, सानुवाद, **मूल्य ₹280 डाक एवं पैकिंगखर्च ₹70 अतिरिक्त।**

नोट— ग्यारह उपनिषदोंका पूरा सेट मँगवानेके लिये पुस्तक मूल्य, डाक एवं पैकिंगखर्चसहित ₹940 भिजवायें। अलग-अलग उपनिषद् भी उपलब्ध हैं।

ईशादि नौ उपनिषद्—शाङ्करभाष्य

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
67	ईशावास्योपनिषद्—सानुवाद	10	69	माण्डूक्योपनिषद् सानुवाद	50	71	तैत्तिरीयोपनिषद् सानुवाद	40
68	केनोपनिषद् ,,	25	513	मुण्डकोपनिषद् ,,	25	72	ऐतरेयोपनिषद् ,,	20
578	कठोपनिषद् ,,	30	70	प्रश्नोपनिषद्— ,,	25	73	श्वेताश्वतरोपनिषद् ,,	45



श्रुति वचनामृत (कोड 2328) पुस्तकाकार—प्राप्त श्रुतियोंसे विशेष उपयोगी लगभग सात सौ श्रुतिवाक्योंका सन्दर्भ सहित सानुवाद इस संकलनमें मंगलाचरण, शांतिपाठ, कर्म, उपासना, सदाचार, जीव, ईश्वर, राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, सूर्य, गणपति, देवी, ज्ञान-वैराग्य, मनोरोग आदि विविध श्रुति वचनोंका संकलन है जो पाठकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। मूल्य ₹40, डाकखर्च ₹40 अतिरिक्त।

प्र० ति० 20-03-2026
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2026-2028
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2026-2028

आवश्यक सूचना

कल्याण मार्च अंक आपके वर्तमान सदस्यताके अनुसार सामान्य डाकसे प्रेषित किया गया है। हमें ज्ञात हुआ है कि कुछ सदस्योंको सामान्य डाकसे भेजी पत्रिका समयपर प्राप्त नहीं हो रही है।

इसीको ध्यानमें रखते हुए, सामान्य डाकवाले सदस्य अतिरिक्त ₹200 जमा करके अपनी कल्याण सदस्यताको रजिस्टर्ड ट्रैकिंग सुविधा डाकके माध्यमसे प्राप्त करनेकी सुविधा ले सकते हैं।

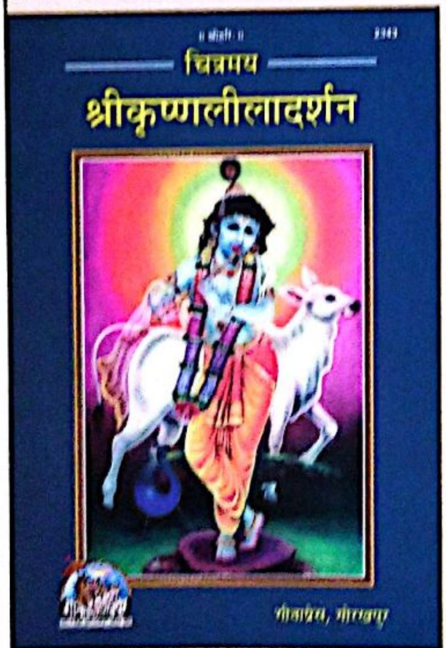
कृपया नीचे दिये गये लिंक द्वारा आप ₹ 200 भुगतानकर हर माह बिना विलम्बके कल्याण प्राप्त कर सकते हैं।

किसी भी जानकारी या सहायताके लिये संपर्क करें—

kalyan@gitapress.org Mob.+91-9235400242

चित्रमय श्रीकृष्णलीलादर्शन

चित्रमय श्रीकृष्णलीलादर्शन (कोड 2343) [ग्रन्थाकार, बड़े अक्षरोंमें चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर]—100 से अधिक आकर्षक चित्रोंके साथ प्रकाशित प्रस्तुत ग्रन्थमें महान् संत परमादरणीय



श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने भगवान् कृष्णके बालरूपका बड़ा ही मनोहारी, रोचकपूर्ण सहज भाषामें चित्रण किया है। इसमें माता देवकीकी विदाईसे लेकर भगवान्के मथुरागमनतकका वर्णन किया गया है।

इसमें कंसको आकाशवाणीका भय, कंसके दरबारमें नारदका आगमन, हरिका प्रादुर्भाव, योगमायाका प्रभाव, श्रीकृष्णका गोकुल जाना, नन्दोत्सव, पूतना, तृणावर्त्त आदिका उद्धार, नामकरण, शिशुलीला, दामोदरलीला, माखनलीला, गोचारण, गोवर्धन धारण, ब्रह्माजीका मोह, रासलीला, मथुरागमन, कंसवध आदि भगवान्के चरित्रका बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है। किन्हीं उत्सव आदिमें उपहारस्वरूप देने लायक यह बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है। सभी श्रद्धालुजनोंको भगवान्की मधुरलीलासे परिपूर्ण इस ग्रन्थका अनुशीलन कर अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिये। मूल्य ₹300, डाकखर्च ₹70

गीताप्रेस, गोरखपुर—273005

✆ +91-9235400242 / 244 WhatsApp +91-9235400242

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
website : www.gitapress.org/gitapressbookshop.in—सूची-पत्र तथा पुस्तकोंका विवरण पढ़ें एवं गीताप्रेसकी खुदरा पुस्तकें Online डाकसे/कूरियरसे मँगवायें।

gitapress_since1923 gitapress_since1923 @GitaPress @gitapress1923